भारत सरकार द्वारा विज्ञापनों के लिए मान्यता प्राप्त

आरएनआई पंजीयन RAJHIN/2016/72902

डाक पंजीयन RJ/ UD/ 29-150/ 2020-2022

शब्द रंजन

संस्थापक एवं संरक्षक डॉ. महेन्द्र भानावत

विचार एवं जनसंवाद का पाक्षिक

वर्ष 7 | अंक 17 | उदयपुर गुरूवार 15 सितंबर 2022 | पेज 8 | मूल्य 5 रू.

आवश्यकता है अकादमियों वाले राजस्थान की

- डॉ. तुक्तक भानावत -

कुछ कह रहे हैं, राजस्थान में तो अकादमियों का जाल बिछ गया है। कुछ कह रहे हैं, कुछ महत्त्वपूर्ण अकादमियां और होनी चाहियें। साहित्य, संगीत, कला की अकादमियों के साथ भाषा अकादमियां भी यहां हैं तो ग्रंथ अकादमी भी है और अभी-अभी बालसाहित्य की अकादमी भी चालू हो गई है। वैसे तो बालसाहित्य, साहित्य का ही हिस्सा है पर इसे अलग से महिमावान बनाने के पीछे बालकों का हित-चिन्तन ही अधिक रहा होगा। जन्म की शुरूआत बचपन से होती है और जनम की अन्तिम परिणति वयोवृद्धावस्था में होती है सो अभी वयो अकादमी की आश्यकता है ऐसी मांग वरिष्ठजनों से उठने लगी है।

भाई लोग तो यह भी कह रहे हैं कि जब हिन्दी ग्रन्थ अकादमी है तो दूसरी भाषा-ग्रन्थ अकादमियां भी देर सवेर खुलेंगी ही। साहित्य अकादमी किस भाषा की है जब संस्कृत, उर्दू, ब्रज, सिंधी, राजस्थानी भाषा की अलग-अलग अकादमियां हैं। साहित्य में तो दलित साहित्य बहुत लिखा जा रहा है। इस साहित्य को लेकर अनेक संगोष्ठियां, सेमीनार तथा महामहोत्सव भी हो रहे हैं। साहित्य भी खासा लिखा जा रहा है। ऐसी स्थिति में दलित साहित्य अकादमी भी शीघ्र ही अस्तित्व में आनी चाहिए।

प्राकृत के उद्भट विद्वान डॉ. प्रेमसुमन जैन का तो कहना ही यह है कि वर्षों से प्राकृत अकादमी की मांग लम्बित पड़ी है। पूरे देश में 17 विश्वविद्यालयों में प्राकृत के विभाग हैं। हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में सर्वाधिक तीन लाख पाण्डुलिपियां प्राकृत भाषा में हैं। प्रथम प्राकृत कवि भी राजस्थान में हुए हैं जो विश्व प्रसिद्धि लिए हैं, हरिभद्र, सिद्धसेन नाम तो चित्तौड़ से ही निकले हैं। अब्दुल कलाम आजाद जब राष्ट्रपति थे तब उन्होंने इस भाषा में बड़ी दिलचस्पी दिखाई थी। डॉ. प्रेमसुमन बताते हैं कि 'णमो अरिहंताणं' नवकार मंत्र का विस्तृत माहात्म्य कलाम साहब ने जैन संत महाप्रज्ञ से सुना तो उन्होंने जैनसाहित्य का विशद एवं गम्भीर अध्ययन किया और जैनदर्शन को महान वैज्ञानिक दर्शन माना।

डॉ. सुमन ने तो पिछले छह वर्ष से उदयपुर में भारतीय प्राकृत स्कॉलर सोसायटी की स्थापना कर सौ सदस्यों के साथ कई सारी प्रवृत्तियां प्रारम्भ कर रखी हैं। वे अध्यक्ष हैं तो डॉ. देव कोठारी उपाध्यक्ष तथा डॉ. जैनेन्द्रकुमार जैन महामंत्री हैं।

उधर चैन्नई में डॉ. दिलीप धींग ने अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध संस्थान में निदेशक पद पर रहते पिछले नौ वर्ष से प्राकृत साहित्य पर गम्भीर अध्ययन करते-कराते दो दर्जन के करीब उच्चस्तरीय ग्रन्थों का प्रकाशन किया। लगभग हजार छात्रों को प्राकृत का डिप्लोमा अध्ययन कराया। उन्होंने बताया कि मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध वहां के जैन कॉलेज में भी प्राकृत का अच्छा अध्ययन हो रहा है। डॉ. कमलचन्द सोगानी कभी उदयपुर विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। उन्होंने तो तब से ही राजस्थान में अन्य अकादमियों के साथ अनिवार्यत: अपभ्रंश अकादमी की महती आवश्यकता महसूस की। वे तो इस क्षेत्र में उपलब्धिमूलक कार्य अभी भी कर रहे हैं।

राजस्थान जनजाति बहुत प्रदेश भी है। सरकार ने उदयपुर में आदिवासी शोध संस्थान खोल रखा है जहां से प्रतिवर्ष ही आदिवासी साहित्य का अच्छा प्रकाशन हो रहा है। यहीं से 'ट्राईब' नामक पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रही है। बांसवाड़ा में सरकार ने गुरु गोविन्दसिंह विश्वविद्यालय भी खोल रखा है।

आवश्यकता है तो एक आदिवासी अकादमी की। इस क्षेत्र में अनेक छात्रों और विद्वानों ने काम किया है। उनकी स्वयं की एक दर्जन के करीब पुस्तकें आदिवासी साहित्य पर प्रकाशित हैं। याद पड़ता है, डॉ. महेन्द्र भानावत ने ट्राईब का एक विशिष्ट आदिवासी लोकसंस्कृति अंक भी प्रकाशित किया था।

मध्यप्रदेश सरकार ने भोपाल में वर्षों पूर्व आदिवासी लोककला परिषद एवं बोली विकास अकादमी प्रारम्भ की थी। वहां से इस विषयक विशद सत्साहित्य प्रकाशित होता रहा है। वहीं से 'चौमासा' नाम से एक नियमित चतुर्मासिक पत्रिका निकल रही है जिसके शताधिक अंक मेरे संग्रह में हैं।

लोककला की बात चली तो सभी विद्वानों ने लोक को सर्वोपरि मानते हुए वेद पुराण से लेकर सारे धर्मग्रन्थों के मूल में लोक की ही सत्ता की महत्ता माना है। सारे शास्त्र लोक से उपजीवित हैं। उद्भवित हैं। साहित्य का बीजोत्पाद लोक की वाणी से हुआ। लोक की आह से उपजा स्वर कण्ठासीन होते आखर सबद बना।

डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर का तो कथन ही यही है कि सरकार को सबसे पहली अकादमी ही लोककला अकादमी खोलनी चाहिये थी। बड़े-से-बड़े ग्रन्थ-महाकाव्यों की रचना लोक की संहिता से निपजी है। जो लिखित ग्रन्थ-शास्त्र सबसे पहले रचे गये वे लोक की कण्ठासीन धरोहर का, अलिखित का लिखित स्वरूप ही तो है।

भारतीय लोककला मण्डल की तो स्थापना ही देवीलाल सामर ने लोककलाओं के उन्नयन, अध्ययन, अनुसंधान, प्रसार-प्रचार तथा प्रकाशन को लेकर की। पहलीबार राजस्थान विकास विभाग के सहयोग से अखिल राजस्थानव्यापी लोककलाकारों के प्रशिक्षण शिविर बेदला राजमहलों में ही किये गये थे। यह सन् 1958 के जुलाई-अगस्त माह में आयोजित किये गये। सामरजी के निर्देशन में इसका संयोजन-संचालन डॉ. भानावत के ही जिम्मे रहा।

समय-समय पर मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़ियाजी से लेकर लगातार प्रदेश में लोककला अकादमी खोलने की आवाज बुलन्द की। लोककला विषयक अखिल भारतीय संगोष्ठियां तथा लोकानुरंजन समारोह भी किये। कई प्रकाशन भी दिये। पूरे प्रान्त का भ्रमण कर लोकजनित अनेक कलाकारों से भेंट करते शोध-सर्वेक्षण भी खूब किया और मृतप्राय कठपुतलीकला को पुनर्जीवन देते नई नाटिका से पूरे विश्व का सर्वोच्च पुरस्कार लेकर पूरे विश्व में भारत, राजस्थान को गौरवमण्डित भी किया।

मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने स्वास्थ्य, शिक्षा, जनकल्याण को लेकर जो योजनाएं प्रारम्भ कर ठेठ ग्राम्यलोक तक जो उपलब्धि दी वह देश में प्रथमत: अपने किस्म की अनूठी सिद्ध हुईं। ऐसी स्थिति में ऊपर जिन विभिन्न अकादमियों के अवतरण की मांग की जाती रही, उन्हें अब अस्तित्व में लाने का उत्तम अवसर है। इस बाबत यह ठीक ही कहा जा रहा है-

अकादम्यां कुछ और हों,
तब जानें कुछ होय।
अभी तवा भी गरम है,
कर गुजरो जो होय।।

उनका यह कथन भी लोग दुहरा रहे हैं- 'मांग करने वाले थक जायेंगे मगर मैं देने वाला कभी नहीं थकूंगा।'

देवी-देवताओं की चौकियां

- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'-

जनजाति पाली पंक्ति हो या लोक समुदाय की लकीर, उनमें देवताओं का अपना स्थान है। देवता काया में कंपित होते हैं, गले में झूलते हैं, घर में पैरांडे और आले से लेकर कंडिया में विराजमान होते हैं, परसाल में प्रतिष्ठित होते हैं, गली में गौरव पाते हैं, गांव के घूमते हैं और खेत की पाली पर चबूतरे, स्थंडिल पर शोभा पाते हैं। ये देवता घर के पूर्वज से लेकर द्वारपाल, ड्योढीपाल, दिकपाल, स्थानपाल, खेतपाल जैसी अनेक पहचान वाले होते हैं। सबके सब पालक और पोषक। वेदों के अपने याग्निक देव हैं।

वास्तुशास्त्र द्वार और कोणों के देवताओं सहित विथि, मध्य भाग जैसे देवताओं की बात कहता है। गांधर्ववेद और नाट्यशास्त्र मंच से लेकर वाद्यों के देवताओं और उनके संस्कारों के मत देते हैं। अर्थशास्त्र भांडागार, कोठार के देवता को सम्मान देने की बात कहता है तो सस्यवेद खेत, खलिहान, मेधि, कोष्ठगार के देवताओं को आदर देने के फल बताता है। ज्योतिष में ग्रह, नक्षत्र, तारा, संक्रांति जैसे कितने देव हैं। आयुर्वेद में स्वास्थ्य के देव धन्वंतरि, अश्विनीकुमार जैसे देवताओं की वैद्यशाला में स्थापना का मत है और काव्य, व्याकरण आदि में सारस्वत का महत्व मिलता है। सबके अपने अपने देव हैं।

इनका मूल लोकांचल रहा है। लोक में अपने पूर्वज की पूजा कदाचित सबसे पहले चली क्योंकि उनके प्रतीक पाहन (पाषाण) से बने मिलते हैं अनगढ़ और अरूप से लेकर सरूप भी और कहीं कहीं लकड़ी के भी। पाहन वाले देवचिह्न पाहनिया और पालिया कहे जाते हैं और काष्ठ वाले चिह्न काठिया और लाकड़िया! निश्चित रूप से यह उस दौर की बात होगी जबकि धातु का प्रयोग शुरू नहीं हुआ होगा। धातु के चलन के बाद ये प्रतीक तांबा या चांदी और सामर्थ्य होने पर सोने के भी बनाए गए।

इन देवचिह्नों के अपने लक्षण हैं। यह दृष्टि की सृष्टि है और सहज श्रद्धा के फूल। जो इनको धारण करता है घर से लेकर समाज तक सम्मान और श्रद्धा का पात्र होता है। पुरुष क्या, स्त्रियां भी इनको धारण करती हैं। मौके के अनुसार ही इनकी महत्ता है। अनेक परिवार इनसे ही अपनी समृद्धि बताते थे किसी के सामने! कहावत यह भी रही -

देवरे में दिखावे पण खाली हाथ मुंडे नी जावे।
कई नी तो मांदलियो गिरवी मेले ने काज करावे!

यानी कि यह जमा पूंजी भी है। घर की साख भी है। बेचने और गिरवी रखने के प्रसंग भी आते हैं लेकिन यह मत भी है कि इनके बेचान पर तोला नहीं जाता। अनुमान लगाकर ही समझ लिया जाता है।

उदयपुर के पास भोइयों की पचोली के देवरे से जुड़े हिम्मत पुरबिया कहते हैं कि यह देवचिह्न सम्मान का सूचक है। यह औरतों और पुरुषों के गले का ऐसा गहना है जिसका आत्मिक सम्बन्ध सात्विक भाव और देव उपासना से रहा है। भोपा और भोपिन, कोटवाल और हजूरिया जैसे जो भी लोग देवरे के बावजी की सेवा चाकरी, भाव भभूति और पंखा पवन से जुड़े होते हैं, यह मादलिया धारण करते हैं। भारतीय सभ्यताओं के उत्खनन में ऐसे प्रतीक मिले हैं, हालांकि उनको ताबीज कह दिया गया हो लेकिन उनके उपयोग का अनुमान और सत्यापन शेष ही है यानी कि यह प्रथा स्थानीय है।

- शेष पृष्ठ सात पर

पोथीखाना

बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए नर्सरी पाठशाला है बाल-रंगमंच

यह अच्छी बात है कि लखनऊ से प्रकाशित 'कला वसुधा' का प्रत्येक अंक किसी एक विशिष्ट विषय पर केन्द्रित हुआ मिलता है। यह विषय वह होता है जिस पर या तो उस विषय को गंभीरता से किसी ने छुआ ही नहीं और यदि कुछ लिखा भी गया तो बहुत कम। अब तक जो विशिष्ट अंक प्रकाशित हुए हैं वे विषय-विशेषज्ञों द्वारा ठोकपीट कर लिखे गये हैं। उन्होंने उन विषयों को वर्षों तक प्रायोगिक रूप में अनुभवी एवं पारखी स्थितियों में जिया है इसलिए वे प्रमाणिक भी बन पड़े हैं।

प्रस्तुत 'बाल-रंगमंच प्रसंग' भी उसी कड़ी का विशिष्ट अंक है। इसमें बाल-रंगमंच के विविध कोणों और आयामों के साथ बच्चों के विकास में बाल रंगमंच की भूमिका तथा बाल शिक्षण में उसकी उपयोगिता को लेकर अनेक रूपों में विद्वानों ने वैचारिक चिन्तन-मन्थन किया है। करीब 40 लेखों में इसका विवेचन करते जो सामग्री दी है वह आंखें खोलने वाली है।

इसके साथ ही एक दर्जन बाल-नाटक भी दिये गये हैं जो बच्चों द्वारा खेले गये हैं। सम्पादकीय में डॉ. उषा बनर्जी का यह कथन रेखांकित किया जा सकता है- 'बाल रंगमंच बच्चों के समग्र विकास की नर्सरी पाठशाला है जिसमें उनके व्यक्तित्व का समग्र विकास होता है। इसकी जड़ें कहीं-न-कहीं लोकरंग प्रक्रिया से ही आरम्भ हुई है।'

प्राथमिक शिक्षा और बाल-रंगमंच को लेकर राकेश जैन कोटखावदा ने अपने अनुभवों को उड़ेलते हुए बालकों के बीच अध्यापन के समय जो कुछ देखा, समझा उसे एकाभिनय, मुहावरों के माध्यम से, मूकाभिनय द्वारा, मुद्राओं द्वारा, उच्चारण द्वारा, आवाज के उतार-चढ़ाव द्वारा, विविध स्वर-संधान, नकल आदि द्वारा बच्चों को रंगमंच पर प्रशिक्षित कर उनकी हिचक, हकलाने की वृत्ति तथा नव्य-भव्य कल्पनाओं के रहते स्वयमेव कुछ सार्थक-निरर्थक प्रस्तुति को रंजक बनाने की कला सहजभावेन दिखाई जा सकती है।

उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है-

(1) बच्चों के गुड्डा-गुड्डी के खेल, गाड़ी-गाड़ी के खेल, घर और दुकान के खेल अथवा ऐसे ही दूसरे अनेक खेल बड़ों के कामकाजों की छोटी-छोटी प्रतिक्रियाएं होती हैं। बालकों के अनुकरणशील स्वभाव में से उत्पन्न होने वाले ये सब खेल उनके छोटे-छोटे नाट्य प्रयोग ही होते हैं।

(2) वे (बच्चे) घटी हुई घटनाओं को अथवा दूर के दृश्यों को अपनी आंखों के सामने खड़ा करके उनका उपयोग करते हैं और इस तरह वे अपनी कल्पना-शक्ति और सृजन-शक्ति का पोषण करके उसको सुदृढ़ और तीव्र बनाते हैं।

(3) इस तरह विद्यालयों की पढ़ाई पर जो निरर्थक व्यय लगातार होता रहता है, वह रूक सकेगा।

(4) अभिनय एक प्रकार की आनन्ददायक क्रिया है जिसमें शरीर की चेष्टाएं तथा मन के भाव, दोनों का शानदार तालमेल होता है। (पृ. 30)

बाल-रंगमंच की अवधारणा पर विचार करते अमरेन्द्र सहाय लिखते हैं- 'बाल-रंगमंच बच्चों को किताबी दुनिया से बाहर निकाल कर एक नई दुनिया में जाने का मौका देता है। रंगमंचीय गतिविधियां बच्चों को अधिक विचारशील, सृजनशील, सकारात्मक सोच वाले दृष्टिकोण को और मुखर बनाती है।' (पृ. 35)

जयवर्धन की निगाह में बाल-रंगमंच के कई प्रकार होते हैं। एक वो जब बच्चों के लिए नाटक करते हैं। दूसरा जब बच्चे बड़ों के लिए नाटक करते हैं और तीसरा वो जब वयस्क बच्चों के लिए नाटक करते हैं। बच्चों के साथ नाटक करते समय ध्यान रखना चाहिये कि उसमें बचपना जरूर हो। बचपना और बचपाना में फर्क होता है। (पृ. 48)

बचपन में दादा-दादी, नाना-नानी से सुनीं अनेक कहानियां हम खास गोठी मिलकर नाटक के अन्दाज में ही खेला करते थे। ऐसी सुनी-सुनाई कहानियों का मेरा संकलन 'राजस्थानी लोककथाएं' नाम से प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है। इसमें 52 मजेदार कथाएं हैं जिनका आसानी से लोक-मनोरंजन के रूप में नाट्य रूपान्तर किया जा सकता है। इनसे बच्चों के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ उनसे जुड़ी अनेक समस्याओं का निराकरण हो सकता है।

हमने भारतीय लोककला मण्डल में कठपुतलियों के माध्यम से ऐसे प्रयोग किये हैं जिनसे उनमें हकलाने, शब्दोच्चारण, हीन मनोवृत्ति जैसी समस्याओं का निराकरण हुआ है। 'हड़ताल' नाटिका के देशभर में एक हजार प्रदर्शन देकर अनेक जगह छात्रों द्वारा की जा रही हड़तालों की समस्याओं का भी निराकरण हुआ है।

श्यामसुन्दरदास ने अपने बचपन में नाटक के अन्दाज में प्रस्तुत करती लोककथा - 'मेरी चिरई को गोड़ो टूटो, बढ़ई भैया जोड़ दे-तंगोड़ दे' का बड़ा ही मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है।

जो भी हो, विदुषी सम्पादिका उषा बनर्जी ने यह अंक प्रकाशित कर विद्वानों, नाट्यविज्ञों, रंगकर्म से जुड़े प्रयोगधर्मियों को वह सारी सामग्री प्रस्तुत कर दी है जिसके लिए किताबों में भी अधिक कुछ नहीं मिलेगा। इस मूल्यवान अंक के लिए बहुत-बहुत बधाई। मुख पृष्ठ पर बालक की निगाहों को निहारिए जरा, पूरी-की-पूरी रंगमंचीय खिलखिलाहट छोड़ता वह बड़ा ही सहज सुहावना परिलक्षित हुआ अनोखी नजर से न जाने कौनसा नजारा मार रहा है या नजराना पेश कर रहा है।

- म. भा

खेलों के जरिए मजबूत हुए संबंध, बन रहा है आपसी समन्वय का माहौल : मुख्यमंत्री

उदयपुर (सुजस)। मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने 14 सितंबर को प्रतापगढ़ एवं उदयपुर के गोगुन्दा के सूरण गांव में ब्लॉक स्तरीय राजीव गांधी ग्रामीण ओलंपिक खेल गतिविधियों का अवलोकन किया। उन्होंने दोनों ही जगहों पर विभिन्न विकास कार्यों का शिलान्यास और लोकार्पण किया। इस दौरान उन्होंने मैदान में खिलाड़ियों से मुलाकात की और उन्हें प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा कि राजीव गांधी ग्रामीण ओलंपिक खेलों में उम्र का कोई बंधन नहीं रखा गया। मैदान में हर वर्ग और बुजुर्ग से लेकर युवा खिलाड़ी एक साथ बिना किसी भेदभाव के हिस्सा ले रहे हैं। इससे गांवों में आपसी मेलजोल और भाईचारे का माहौल बना है।

गहलोत ने कहा कि राजीव गांधी के नाम से यह ओलंपिक खेल, देश ही नहीं दुनिया में एक नई और अनूठी पहल है। जल्द ही शहरों में भी बड़े स्तर पर खेल आयोजन होंगे। उन्होंने कहा कि राजस्थान में प्रतिभाओं की कोई कमी नहीं है और हम ग्रामीण ओलंपिक खेलों के माध्यम से इन प्रतिभाओं को आगे लाने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि खेल स्टेडियम के साथ-साथ खेल छात्रावास बनाने की दिशा में विचार किया जा रहा है।

गहलोत ने बताया कि सरकार राज्य एक करोड़ 35 लाख महिलाओं को मोबाईल फोन इन्टरनेट कनेक्शन के साथ उपलब्ध कराने जा रही है। राज्य सरकार ने हाल ही में इंदिरा गांधी शहरी रोजगार गारंटी योजना लागू कर 100 दिवस का रोजगार उपलब्ध कराकर बेरोजगारों को संबल प्रदान करने का प्रयास किया है। मुख्यमंत्री ने कहा कि गौवंश में फैल रहे लंपी स्किन डिजीज की रोकथाम के लिए राज्य सरकार मजबूती के साथ युद्ध स्तर पर हरसंभव प्रयास कर रही है। एलोपैथिक के साथ ही आयुर्वेद व होम्योपैथी के माध्यम से भी उपचार किया जा रहा है।

गहलोत ने गोगुंदा में आयोजित समारोह के दौरान हॉकी और कबड्डी के खिलाड़ियों से मुलाकात की और हॉकी स्टिक से शॉट मारकर मैच का शुभारंभ किया। कबड्डी मैदान पर भी खुद कबड्डी खेलकर खिलाड़ियों को प्रोत्साहित किया। इस मौके पर उन्होंने सूरण विद्यालय में स्टेडियम बनाने के लिए घोषणा की। मुख्यमंत्री के गोगुंदा और प्रतापगढ़ के हेलिपेड पहुंचने पर मेवाड़ के पारम्परिक लोकनृत्य गैर और गवरी नृत्य के कलाकारों ने स्वागत किया।

मुख्यमंत्री ने गोगुंदा में 1.75 करोड़ रूपए की लागत से तैयार केजीबीवी नांदेशमा ब्लॉक सायरा के आवासीय भवन का लोकार्पण। 6.07 करोड़ रूपए की लागत से उदयपुर की 20 पंचायत समितियों में बनने जा रहे मेजर ध्यानचंद खेल स्टेडियम का शिलान्यास तथा 18.92 करोड़ रूपए की लागत से 88 ग्राम पंचायतों में खेल मैदान के विकास कार्यों का शिलान्यास किया। इसी प्रकार प्रतापगढ़ में 4.14 करोड़ रूपए की लागत से निर्मित डाइट प्रशिक्षण भवन का लोकार्पण, 2.80 करोड़ रूपए के बहुउद्देशीय खेल छात्रावास परिसर का शिलान्यास, 13 करोड़ रूपए के केसुंदा से भाटखेड़ा सड़क के सुदृढ़ीकरण एवं चौड़ाईकरण कार्य, 20 करोड़ रूपए के प्रतापगढ़ से बिलेसरी सड़क का सुदृढ़ीकरण एवं चौड़ाईकरण, 25 करोड़ रूपए के बड़ीसादड़ी-छोटीसादड़ी-नीमच रोड के सुदृढ़ीकरण एवं चौड़ाईकरण कार्य, 3 करोड़ रूपए के पण्डावा से मेहंदी खेड़ा सड़क सुदृढ़ीकरण एवं चौड़ाईकरण कार्य, 50 करोड़ रूपए के कुलथाना से सालमगढ़ सड़क सुदृढ़ीकरण कार्य, 9 करोड़ रूपए के जाखम नदी पर पुलिया निर्माण के कार्य, 6 करोड़ रूपए के लोहागढ़ से देवला सड़क टू-लेनिंग के कार्य, 3 करोड़ रूपए के 50 बेड फील्ड हॉस्पिटल धरियावद का कार्य, 4.5 करोड़ रूपए की लागत के राजकीय कन्या महाविद्यालय भवन टीमरवा में कार्य, 4.5 करोड़ रूपए की लागत के राजकीय महाविद्यालय भवन भचुंड़ा में कार्य, 4.5 करोड़ रूपए की लागत के राजकीय महाविद्यालय भवन पीपलखूंट में कार्य तथा 1 करोड़ रूपए की लागत के लालगढ़ लवकुश वाटिका इको टूरिज्म प्रोजेक्ट गौतमेश्वर महादेव का शिलान्यास किया।

जिंक को मिले 26 पुरस्कार

उदयपुर (ह. सं.)। वेदांता समूह की कंपनी एवं जिंक, लेड और सिल्वर की देश की सबसे बड़ी और एकमात्र एकीकृत उत्पादक कंपनी हिंदुस्तान जिंक, ने क्वालिटी कॉन्सेप्ट पर आयोजित 21वें कन्वेंशन में 26 पुरस्कार जीते हैं। कार्यक्रम का आयोजन क्वालिटी सर्कल फोरम ऑफ इंडिया, राजसमंद चैप्टर द्वारा किया गया। इसकी थीम इंटीग्रेटेड क्वालिटी कॉन्सेप्ट्स - द गेटवे टू ग्लोबल लीडरशिप थी। कार्यक्रम में 10 से अधिक संगठनों की 85 टीमों ने प्रतिभागिता की।

इसमें हिंदुस्तान जिंक ने 21 स्वर्ण और 5 रजत पुरस्कार जीतकर बड़ी उपलब्धि हासिल की। रामपुरा अगुचा माइन ने एलाइड कॉन्सेप्ट में 2 गोल्ड और क्वालिटी सर्कल में 1 सिल्वर अवार्ड, दरीबा स्मेल्टर कॉम्प्लेक्स ने एलाइड कॉन्सेप्ट्स में 4 गोल्ड और क्वालिटी सर्कल में 2 गोल्ड, सिंदेसर खुर्द माइन ने एलाइड कॉन्सेप्ट में 2 गोल्ड, 1 सिल्वर और क्वालिटी सर्कल में 1 गोल्ड एवं1 सिल्वर, जिंक स्मेल्टर देबारी ने एलाइड कॉन्सेप्ट में 2 गोल्ड और 5 केस स्टडी में 1 गोल्ड अवार्ड तथा क्वालिटी कॉन्सेप्ट में 1 गोल्ड अवार्ड और 1 सिल्वर अवार्ड जीता।

हिंदुस्तान जिंक द्वारा प्राप्त की गई यह गौरवान्वित उपलब्धि उन सभी कर्मचारियों के सहयोगात्मक प्रयास को दर्शाती है जो व्यावसायिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, सुरक्षा उपायों को मजबूत और अधिक सस्टेनेबल भविष्य की दिशा में कार्य कर रहे हैं। कंपनी का लक्ष्य भविष्य में इसी तरह के अनुकरणीय प्रदर्शन के साथ आगे बढ़ना है।

स्मृतियों के शिखर (149) : डॉ. महेन्द्र भानावत

जनजातियों में भरावा शिल्प

अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य कई दृष्टियों में श्रेष्ठ कहा गया है। इसका एक कारण उसकी सोच-बुद्धि, व्यावहारिक विवेक, श्रमकौशल, महत्वाकांक्षा तथा प्रत्येक वस्तु को उपयोगी बनाना रहा है। इसके पीछे उसकी कला-चेतना और सौंदर्य की अभिव्यक्ति का भाव प्रमुख रूप में देखने को मिलता है। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी निरा जंगली बना रहता तथा उन्नति, विकास और प्रगति के नाम पर हमें कुछ भी देखने को नहीं मिलता।

यह सब मनुष्य ने प्रकृति से ग्रहण किया। चारों ओर उसने जो भी देखा वह रहस्यमय और चकित करने वाला तो था ही किंतु उसके पीछे की भावभूमि जानने के लिए वह निरंतर छटपटाहट की मनोभूमि में भटकता रहा और नये-नये प्रयोग करता रहा। इसी का फल है कि मनुष्य ने ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में अकल्पनीय कार्य कर सबको चकित कर दिया।

प्रकृति के विशाल परिक्षेत्र में उसने घने जंगलों में विशाल वृक्षों को देखा। जमीन के नीचे खदानों में तरह-तरह के मिट्टी-धातु-कण, खनिज पदार्थ देखे। उबड़खाबड़ जमीन को उपयोगी बनाकर उसने कृषि कार्य प्रारंभ किया और कई तरह की फसलें पैदा की। उसने कपास पैदा किया और उससे कपड़ा बुनकर अपना तन ढका। विविध धातुओं के आभूषण बनाकर अपना श्रृंगार किया। लकड़ी का उपयोग कर उसने अपने रहने के लिए घर बनाया। मरे हुए जानवर के चमड़े का उपयोग कर अपने पांवों को सुरक्षित करने के लिए जूतों का आविष्कार किया।

प्रकृति में जो कुछ उसने देखा, उसका उसने अपनी सूझबूझ से अपने लिए कई सारी चीजों का निर्माण किया। विविध भांति के रंगों का आविष्कार और उनके द्वारा अपनी रंग चेतना को मुखरित करना, रंगे हुए कपड़ों में मनोनुकूल भांतें निखारना, कपड़ों में बंधेज की बूंदकियां उभारना जैसे कई कार्य-प्रयोग उसकी कला-कारीगरी के द्योतक हैं।

ऐसी ही कारीगरी का कमाल धातु की ढलाई की कला है। विभिन्न धातुओं का आविष्कार कर तरह-तरह की उपयोगी चीजों का निर्माण करना अपनेआप में कारीगरी की दक्षता है किंतु किसी धातु को गर्म कर उसे वांछित आकार में ढालना उससे भी बड़ी कला और सूझबूझ का कार्य है। यह एक ऐसा कार्य है जो कई सरणियों में गुजारा जाता है। कई प्रक्रियाओं में ढाला जाता है। कई प्रयोगों से पूरित किया जाता है और अंत में जो कलाकृति निर्मित होती है वह बस देखते रह जाने की चीज होती है। इस दृष्टि से राजस्थान का मेवाड़ अंचल बड़ी प्रसिद्धि लिए रहा। लेखक ने उदयपुर क्षेत्र के धरियावद कस्बे में रह रहे रामनारायण भरावा (50) से 5-6 जून 2006 को भरावा कला की निमित्ति का प्रत्यक्षीकरण करते विस्तृत जानकारी प्राप्त की।

धातु की इस ढलाई में पीतल, तांबा, जस्ता, रांगा और इनके मिश्रण से मिश्र धातु की बहुत सारी मूर्तियां, आभूषण, सजावटी चीजें, खिलौने, गृहोपयोगी चीजें एवं अन्य दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएं तैयार की जाती हैं। इनके अलावा बच्चों के लिए तरह-तरह के खिलौने, तरह-तरह के दीपक, छोटी-छोटी घूघरियां, बड़े-बड़े घूघरे, टोकरे-टोकरियां तथा घंटे-घंटियां बनाई जाती हैं। इन्हें बनाने का काम भरावा जाति के लोग करते हैं। भरावा का अर्थ भरने से है। यह भराई किसी कृति को विशिष्ट आकार देने के लिए की जाती है। भराई से पूर्व कलाकृति का निर्माण करने की क्रिया बड़ी जटिल है। यह कृति मुख्यत: मिट्टी से तैयार की जाती है। इसके लिए जो चीज बनानी होती है उसमें सबसे पहले शिल्पकार अपने हाथों से मिट्टी द्वारा उस कृति का निर्माण करता है और उसके ठीक से सूख जाने के बाद उस पर मोम की परत चढ़ाता है। मोम के ऊपर फिर मिट्टी का मोटा लेप किया जाता है और ऊपर की ओर मिट्टी की एक ऐसी संरचना बनाई जाती है जिसमें छेद कर दिया जाता है जो मोम की परत से जुड़ा रहता है।

इस प्रकार किसी कृति का पूरा आकार तैयार होने पर फिर उसमें किसी धातु को गर्म कर डाला जाता है जो मोम की जगह ले लेती है। इस धातु के ठंडी होने पर मिट्टी अलग कर दी जाती है जिससे भीतर से धातु की कलाकृति निखर उठती है। इस प्रकार धातु की ढलाई के कार्य में मुख्यत: मिट्टी और मोम का योग और उसकी संरचना ही प्रधान होती है।

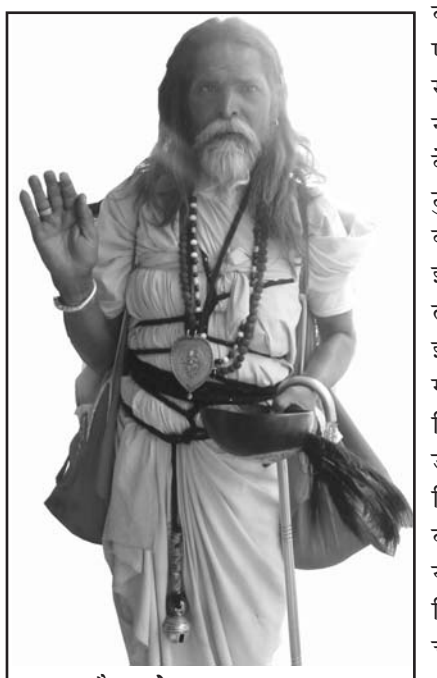

भैरू भोपा घुघर्‌या बाबा

जिस वस्तु की ढलाई करनी होती है उसका सबसे पहले आकार तैयार किया जाता है। यह आकार मिट्टी से बनाया जाता है। यह मिट्टी 'बोजी मिट्टी' कहलाती है, जो नदी के ढावे (ऊंचे उठे किनारे) से लाई जाती है। इसके अलावा उदई (दीमक) की मिट्टी भी काम में ली जाती है जो खेतों की मेड़ों या फिर जंगलों से प्राप्त की जाती है। इस मिट्टी में गोबर मिलाकर उसे एकमेक कर लिया जाता है। इसे 'गबोटी' कहते हैं।

जब यह गबोटी अच्छी गाढ़ी बन जाती है तब उसका वांछित आकार बनाया जाता है जो 'सांचा' कहलाता है। इस सांचे को शिल्पकार अपनी भाषा में 'डोल' कहते हैं। इसके लिए पहले इस सांचे का ऊपरी सिरा (धड़) बनाया जाता है और उसके बाद हाथ-पैर आदि उपांग बनाये जाते हैं। छोटी-छोटी चीजों में हाथ-पांव आदि मोम से बनाये जाते हैं। हाथी जैसे जानवर के पांव मिट्टी से बनाये जाते हैं। नदी के ढावे अथवा दीमक की बांबी की मिट्टी फुरफुरी होती है। इसका एक-एक कण अलग-अलग खुला हुआ होता है इसीलिए चिकनी मिट्टी का उपयोग नहीं कर यह मिट्टी काम में ली जाती है। इसका रंग भूरा होता है। चिकनी मिट्टी के उपयोग से सांचे के फट जाने का डर बना रहता है। सांचे को मजबूत आधार देने के लिए बांस की सींकें काम में ली जाती हैं।

मिट्टी का सांचा बन जाने के बाद उस पर मोम चढ़ाया जाता है। यह मोम केवल मधुमक्खी का बनाया हुआ मेण (मोम) नहीं होता। इसमें लार और मूंगफली का तेल मिलाकर एकमेक कर लिया जाता है और उसके बाद अच्छा गर्म कर कपड़े से छान लिया जाता है। मौसम के अनुसार गर्मी में इसे कम गर्म किया जाता है जबकि सर्दी में थोड़ा अधिक गर्म कर लिया जाता है। इसके बाद इसे ठंडा होने दिया जाता है। जब यह ठर जाता है तब इसकी बट्टी बनाई जाती है। ठरने पर मोम का रंग काला हो जाता है।

मोम की इस बट्टी के अलग-अलग तार बनाये जाते हैं। ये तार मिट्टी के उस सूखे सांचे (मॉडल) पर चढ़ाकर उसे पूरा ढक दिया जाता है। बीच-बीच में कुछ छेद रखे जाते हैं ताकि उनसे मोम और हवा का निकास आसानी से हो सके। मोम की इस परत पर फिर एक दूसरी तरह की मिट्टी चढ़ाई जाती है जो घोड़े अथवा गधे की लीद मिलाकर पानी की सहायता से तैयार की जाती है। जब यह अच्छी तरह से गूंद ली जाती है तब इसका लोया बना लिया जाता है। लोये वाली यह मिट्टी 'गारा' कहलाती है। इस गारे पर मोम की एक पतली परत (सूत-डेढ़-सूत के लगभग) चढ़ा दी जाती है। इस परत पर मोम की ही सहायता से जिस आकृति का निर्माण किया जा रहा है उससे संबंधित विशेष आभूषण, अलंकरण, आंख, कान, नाक, होठ आदि नक्श उभारे जाते हैं।

मॉडल बनाने का कार्य हाथ की अंगुलियों से किया जाता है। ये अंगुलियां इतनी दक्ष होती हैं कि अच्छे-अच्छे औजार को पीछे धकेल देती हैं। बारीक काम जैसे आभूषण एवं अन्य अलंकरण तथा सज्जा के लिए अंगुलियों के नाखून तथा लोहे के चद्दर के तीखे चौड़े आंके-बांके टुकड़े ही औजार के रूप में काम में लिए जाते हैं। इसके बाद फिर गारे का लेप चढ़ा दिया जाता है। इस लेप के सूखने के बाद गारे का एक लेप फिर किया जाता है और फिर उसे सूखने के लिए रख दिया जाता है। इसके बावजूद भी शिल्पकार को यदि यह लगता है कि मिट्टी का एक लेप और चढ़ाने की आवश्यकता है तो वह एक लेप और चढ़ायेगा क्योंकि वह जानता है कि यदि ठीक से मिट्टी का लेप नहीं चढ़ाया गया तो गर्म-गर्म जो धातु डाली जाएगी वह उस सांचे को ही फाड़ देगी जिससे अब तक की करीकराई सारी मेहनत मिट्टी में मिल जाएगी।

मॉडल बनाने, बने हुए मॉडल को सूखाने, सूखे हुए मॉडल पर मोम की परत चढ़ाने और फिर उस पर मिट्टी चढ़ाने, मिट्टी चढ़ाकर सूखाने, सूखाकर फिर मिट्टी चढ़ाने और फिर उसे सूखाने, सूखने पर फिर मिट्टी चढ़ाने और फिर सूखाने जैसी क्रिया में दो-तीन सप्ताह का समय तो लग ही जाता है। यह भी तब मौसम साफ हो और अच्छी धूप हो अन्यथा इसमें और अधिक समय लगना भी स्वाभाविक है। फिर इसके लिए ऐसी जगह भी जरूरी है जहां बने-बनाये सांचे सुरक्षित रह सकें और दिन भर उन्हें पर्याप्त धूप लग सके। बीच-बीच में मॉडल को सब ओर से सूखाने के लिए बार-बार थाल देनी होती है।

जो भी वस्तु बनाई जाती है उसके मिट्टी का मुंह अवश्य बनाया जाएगा। यह मुंह ढलाई की जाने वाली धातु के जाने का रास्ता होता है। बड़ी आकृति वाली चीजों में दो मुंह बनाये जाते हैं। एक मुंह माल (धातु) भरने के लिए और दूसरा हवा बाहर निकलने के लिए। माल भरने वाला मुंह एक पोली नलिका द्वारा उस वस्तु से जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण का यह, एक प्रकार से पूर्वार्द्ध पक्ष है। इसका उत्तरार्द्ध पक्ष भट्टी की सहायता से ढलाई करने का होता है जिसके द्वारा कोई वस्तु पूर्ण रूप से तैयार हो पाती है।

ढलाई के लिए घर के आंगन, चौक अथवा वृक्ष के नीचे भट्टी बनाई जाती है। जिन कारीगरों के पास अलग से नोहरा, वाड़ा आदि होता है वहां भट्टी बनादी जाती है। इस भट्टी के पास जो खुली जगह होती है वहां बनने वाली चीजें सूखाने को रखी रहती हैं। इसके साथ ही भट्‌टी में जलाने के लिए लकड़ी, कोयले एवं कंडे आदि भी रखे रहते हैं। भट्‌टी में जलाई जाने वाली लकड़ियां कुछ गीली होती हैं ताकि वे जल्दी न जलकर धीमे-धीमे अपनी आंच देती रहें। भट्‌टी संबंधी ढलाई का सारा कार्य पुरूषों द्वारा ही संपन्न किया जाता है। अन्य कार्य जैसे मिट्टी आदि लाना और उसे वस्तु निर्माण योग्य बनाना जैसे कार्यों में महिलाएं अधिक सक्रिय होती हैं।

भट्‌टी कलाकार स्वयं ही तैयार कर लेता है। यह हर कलाकार की अपनी अलग होती है। इसके साथ चमड़े की बनी धौंकनी होती है जिससे धौंक कर हवा दी जाती है। यह हवा आग को प्रज्वलित करती रहती है। धौंकनी पर वह पात्र रखा जाता है जिसमें कोई धातु गलानी होती है। यह पात्र 'मूस' कहलाता है। यह मूस लोहे का होता है लेकिन अधिकतर भरावे इसे मिट्‌टी से स्वयं ही तैयार कर लेते हैं। इस मूस में जिस धातु को पिघलाना होता है उसे खूब गर्म किया जाता है। जब मूस में से नीली-हरी लपटें निकलने लगती हैं तब समझ लिया जाता है कि धातु की पिघलाई पूरी होकर द्रव्य रूप में बदल गई है।

इस बीच भट्‌टी की गर्मी पाकर निर्माणकारी वस्तु का आधा मोम बाहर निकल जाता है जबकि आधा मोम भीतर ही जल जाता है। बाहर जो निकल जाता है उसे फिर गर्म कर, छानकर काम में लिया जाता है। मुंह वाला स्थान खाली होता तब गर्म हुई वस्तु को संडासी से पकड़कर उलटी कर देते हैं और मुंह वाले छेद में पिघली हुई धातु भर दी जाती है। इससे जहां-जहां मोम किया होता है वह जगह धातु ले लेती है। धातु की यह भराई ही उसकी ढलाई कहलाती है।

धातु बनने के बाद उस वस्तु को ठंडा होने के लिए खुली छोड़ दी जाती है। जब वह ठंडी हो जाती है तब ऊपर की मिट्‌टी की परत को चाकू या छुरी से तोड़कर हटा ली जाती है। इसके बाद इसे रेत पर घिसकर साफ की जाती है और फिर इमली के पानी में चमका दी जाती है। इससे पूर्व भीतर की जली हुई मिट्‌टी बाहर निकाली जाती है। इससे उस वस्तु का वजन कम हो जाता है। इसी वस्तु में जब दूसरा मुंह नहीं होता है तब वह मिट्टी भीतर ही भरी रह जाती है। ऐसी स्थिति में वह वस्तु भारी होती है। कोई भी शिल्पी भट्‌टी का कार्य प्रतिदिन नहीं करता है। प्रतिदिन तो वह चीजें बनाने का काम करता है। जब एक साथ बहतु सारी चीजें तैयार हो जाती हैं तब ही भट्टी का कार्य प्रारंभ किया जाता है। इसलिए आमतौर पर भरावा उपकरण बनाने में ही लगा रहता है कारण कि यही प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें श्रम और समय दोनों ही पर्याप्त मात्रा में लगाना पड़ता है।

बातचीत के दौरान भरावा कलाकारों ने बताया कि वे जो चीजें बनाते हैं उसे 'भराई कला' कहते हैं इसीलिए ये लोग भरावा कहलाते हैं। दूसरे लोग इसे 'ढलाई कला' कहते हैं। यदि देखा जाये तो भरावा जो वस्तु बनाते हैं उसे निश्चत आकार देने के लिए जहां-जहां मेण भरते हैं वहां-वहां धातु को गर्म कर ही तो भरते हैं। - **शेष पृष्ठ सात पर**

शब्द रंजन

उदयपुर, गुरूवार 15 सितंबर 2022

सम्पादकीय

भाषा और बोलियों के रगड़ जाल में

हमें आजादी के अमृत महोत्सव मनाने की तो अपार खुशी है मगर अपने राष्ट्र की भाषा के सिर पर सेहरा तो पिछले पिचहतर वर्षों में भी नहीं बांध पाये। यह दुर्दिनजनित असह्य दुखद घटना ही है। बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कब लिखा था- 'निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल' मगर हम अभी भी उस शूल की चुभन लिए दर्दीले बने हुए हैं।

हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का तिलक तो हम नहीं दे पाये पर हमारे अपने राजस्थान में भी हम राजस्थानी की टांयफांय में उलझे हुए हैं। किन प्रान्तों के अंचल और उनमें बोली जाने वाली आंचलिक बोलियां नहीं हैं? फिर वहां उनकी प्रांतीय भाषा कैसे सबके चित्त चढ़ी हुई है। आपसी सौहार्द के अभाव में भाषा की बंदरबांट खीचड़ी की खदबद से सभी परिचित हैं।

सब नहीं, कुछ मनचढ़े उस्ताद हैं जो भाषा-विभाषा के मक्कड़जाल को उलझाने में आनन्दीलाल बने हुए हैं। उनके रहते हम न अच्छी हिन्दी पनपा सके, न राजस्थानी का पाण रख सके और बोलियां तो बिचारी बें-बें कर ही अपना अस्तित्व छोड़ रही हैं। आओ, अमृतवर्ष में अमिय के छींटों से भाषा को महकायें।

हम भूल गये कि महात्मा गांधी से लेकर पुरुषोत्तमदास टंडन, काका कालेलकर, स्वामी दायानंद सरस्वती, सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे महान राष्ट्रभक्त सेवकों से लेकर अनेक चिन्तकों और बुद्धिजीवियों ने अपनी निज भाषा के स्थान पर हिन्दी को बढ़ावा दिया और जनजागरण प्रबल किया।

शीर्षस्थ राजनेताओं में अटलबिहारी वाजपेयी और अब नरेन्द्र मोदी ने विश्वपटल पर हिन्दी को हिन्द की हिन्दवाणी प्रतिष्ठित की है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समय की विद्वत् टोली से लेकर कवीन्द्र रवीन्द्र, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, निराला, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्राकुमारी चौहान तथा उनके बाद के अनेक साहित्यकारों और मन्नू, सोबती, महाश्वेता जैसी अनेक लेखिकाओं ने हिन्दी साहित्य के अनमोल रत्न देकर सुशोभित किया।

राजकाज से लेकर उच्च पदस्थ पढ़ाई में भी हिन्दी पाठ्यक्रम तथा परीक्षाएं प्रारम्भ हुई हैं। कोई निराशा नहीं है। विश्व-परिदृश्य में देखें तो अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी पाठ्यक्रम द्वारा प्रतिवर्ष छात्रों की बढ़ती संख्या अध्ययनरत है और शोध पर गर्वित है।

ऐसे अनेक लोग हैं जो हिन्दी से प्रेरित होकर पिछली चार-चार पीढ़ियों से उसका प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। गैर हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का बोलबाला लगातार बढ़ रहा है। हमारे देश में भी इसका रथ लगातार अपना पथ-विस्तार पा रहा है पर अनेक जगह तंग दिलवाले चिल्लपों पर अपनी पहचान देते हाताहूती करते पाये जा रहे हैं। उनका भी हम स्वागत ही करते हैं कि उनका विरोध भी हिन्दी की प्रतिष्ठा में ही सहायक होता अपनी मौन सहमति-स्वीकृति का ही सूचक है। जय हिन्दी।

महिला दुग्ध किसानों ने आईडीएफ वर्ल्ड डेयरी समिट में शक्ति दिखाई

उदयपुर (ह. सं.)। राजस्थान के लाखों डेयरी किसानों, मुख्य रूप से महिलाओं ने मूल्यवर्धित डेयरी उत्पादों में अपनी जगह बनाने का संकल्प प्रदर्शन किया, जो आईडीएफ वर्ल्ड डेयरी समिट में वैश्विक डेयरी क्षेत्र के सामने प्रदर्शित हुआ। इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा किया गया था। इन संगठनों में से दो संगठन सखी और आशा क्रमशः अलवर और उदयपुर क्षेत्रों की ग्रामीण महिलाओं द्वारा बनाई गई हैं, जबकि चार उत्पादक संगठनों में सबसे बड़ा पायस जयपुर के गुलाबी शहर से है; जिसमें लगभग 170,000 हितधारकों के संयुक्त स्वामित्व के साथ मरुस्थल राज्य राजस्थान के लगभग 5,000 गांवों की 110,000 महिला सदस्य शामिल थीं।

नरेन्द्र मोदी की टिप्पणी को प्रतिबिंबित किया गया कि डेयरी क्षेत्र में महिलाओं का 70 प्रतिशत से अधिक का योगदान है। आशा ने मरुधरा पनीर और दही का अनावरण किया, जबकि सखी अलवर से गाय का घी लेकर आई जो लोकप्रिय मिठाई मिल्क केक के लिए भी जाना जाता है। पायस ने शेखावाटी की गाय बेल्ट की संगठन के नाम पर प्रीमियम घी पेश किया। इन सभी ने इन उत्पादों को राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड के अध्यक्ष मीनेश शाह के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने राज्य के इन दूध उत्पादकों की भूमिका की सराहना की, जो एक साथ आए और लगभग 1,600 करोड़ रुपये का वार्षिक कारोबार करने के लिए प्रति दिन लगभग 9,00,000 लीटर दूध की आपूर्ति कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि चार में से तीन उत्पादक संगठन पूरी तरह से राज्य की महिलाओं के हैं। उन्होंने संगठन के निर्माण में मार्गदर्शन और मदद करने के लिए राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड और इसकी सहायक एनडीडीबी डेयरी सेवाओं को धन्यवाद दिया और एनडीडीबी के अध्यक्ष, मीनेश शाह और एनडीएस के एमडी, डॉ सौगत मित्रा को महिलाओं से अच्छे ब्रांड के उत्पाद की भविष्य में पेशकश करने का रास्ता दिखाया।

अपना देश अपनी संस्कृति

गवरी में प्रदर्शित कालू कीर

गवरी में प्रदर्शित कालू कीर नामक स्वांग भी अपनी अहमियत रखता है। कीर जाति के लोग तरबूज-खरबूज, सिंघाड़े तथा मछली पकड़ कर बेचने का धंधा करते हैं।

गवरी में दिखाये जाने वाले कालू कीर की कथा के अनुसार मानसरोवर में देवी अम्बाव की अंगूठी गिर जाती है। उसे जलजीव मगरमच्छ निगल जाता है। इस खातिर माछले को मारकर अंगूठी प्राप्त करने का जिम्मा कालू कीर को दिया जाता है। कालू जाना माना बड़ा दक्ष और होशियार गोताखोर था।

इस पर कालू और उसकी घरवाली किरण कुटकड़िये से कहती है कि यह काम हमसे नहीं होगा। राज्य में राजा हठिया का बड़ा भारी दबदबा है। हमें उससे डर लगता है। यह सुन देवी अम्बाव उन्हें आश्वासन देती है, हठिया तुम्हारा बाल बांका नहीं कर सकता। तुम निर्भय रहो। मैं वचन देती हूं कि वह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। इससे कालू निश्चिंत हो गया। उसने सरोवर में जाल फैलाकर माछला पकड़ अंगूठी प्राप्त की।

यह कालू कीर कोई छोटा-मोटा सामान्य व्यक्ति नहीं है। यह पहुंचा हुआ अवतारी संत पुरुष था। इसका उल्लेख प्राचीन धर्मग्रन्थों में भी मिलता है। संत साहित्य के प्रख्यात खोजक ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल के अनुसार श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि सतयुग में नारदजी ने कालू से दीक्षा ग्रहण की थी। राजा वेन की जांघ के मर्दन से कालू का अवतरण हुआ। छोटे कद का डीलडौल होने से इसका कालू नाम हुआ।

भक्तमालकार कलियुग के संत भक्तों का आसरा बारह सौ-तेरह सौ वर्षों से मानते हैं। कालू कीर माना हुआ संत-भक्त था। उसका अस्तित्व गोरखनाथ, रामानुज तथा निम्बार्क जैसे संतों के समय कबीरदास के समकालीन मिलता है। सिंहलजी के अनुसार संत बनने के बाद कालू कीर ने जो लेखन किया उसका उल्लेख जगन्नाथजी रचित गुणगंजनामा में तथा सबरंगी सरह चिन्तामणि में मिलता है। उन्होंने इनका संग्रह-सम्पादन-समय वि. सं. 1684 के आसपास माना है। कीर समाज के लोग कालू का जन्म भादवा सुदी बीज (द्वितीया) को मानते हैं।

भक्तमाल में वर्णित कथा का उल्लेख करते हुए सिंहलजी ने स्पष्ट किया कि बादशाही तालाब मानसरोवर में कालू ज्योंही मछली पकड़ने उतरा कि बादशाह के व्यक्ति उसे पकड़ने पहुंच गये। उन्हें देख कालू घबराया कि यदि वह उनके हाथ पड़ गया तो वे उसे जेल में ठूंस देंगे अथवा फांसी पर लटका देंगे। अतः उनसे बचने के लिए उसने अपना स्वरूप बदलते तिलक छापे लगाकर तपस्वी का रूप बना लिया और आंख मींच पानी में खड़ा हो गया। उसे देख बादशाह के लोगों ने समझा कि यह तो कोई तपस्वी सिद्ध पुरुष दिखता है, इसे पकड़ने की बजाय कोई भेंट चढ़ानी चाहिए।

यह सोच वे बादशाह के पास पहुंचे और खबर कराई। बादशाह ने उसे कैद करने की बजाय भेंट स्वरूप स्वर्ण मोहरें दीं जिन्हें ले जाकर तपस्यारत पुरुष अर्थात् कालू को भेंट दी। इस घटना का कालू पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने अपना बचाव तो कर लिया पर वह आत्मग्लानि से भर गया। परिणामस्वरूप वह भगवान की भक्ति में लीन हो गया और साधना के प्रताप से एक उच्च संत-भक्त बन गया।

सिंहलजी ने एक साखी के माध्यम से बताया कि ऐसी और भी साखियों में कालू की छाप की यह जानकारी मिलती है। साखी है-

बानौ बड़ गोपाल कौ, तिलक छाप गळमाळ।
काळू कहतो जम डेरे, भै मानैं भोपाल।।

गुणगंजनामा में उपलब्ध वर्णित दो साखी का नमूना-

(अ) पर्वत सै नाहिं कहै, नाहीं धरणि अकास।
काळू कोई जन कहै, जाके घट परकास।।

(ब) जो दुखदाई आपको, ताकौ इहिं विधि मार।
बहुत सजा काळू कहै, दिल से देई उतार।।

ऐसे और भी बणजारा, कालबेलिया, सिकलीगर जैस मानव तथा अन्य जलीय, नभीय तथा मानवेतर, नुगरे भूत-प्रेत तथा सुगरे देवीय पात्र के रूप में गवरी का मण्डल मण्डित करते हैं। ऐसे प्रदर्शन-प्रहसन भी हैं जिनकी जातिगत संरचना तथा समाजगत व्यावसायिक गुण-धर्म के बारे में गहन-अध्ययन एवं जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इससे पता चलता है कि गवरी में मात्र आदिवासी भीलों का ही दस्तावेजीकरण चित्रित नहीं हुआ अपितु पूरे गांव में रह रही जातियों का पारदर्शी आईना परिदर्शित हुआ मिलता है।

आज तो किसी बड़ी अच्छी ख्यात-प्रख्यात रंगमंचीय प्रस्तुति के लिए अलग-अलग एक्पर्ट का सहयोग अनिवार्य हो गया है। कोरियोग्राफर से लेकर सज्जाकार, मेकअप मेन, डिजाइनर, स्क्रिप्ट लेखक, प्रशिक्षक, जैसे अनेक लोग मिलकर काम करते हैं फिर एक-से-एक बढ़कर होशियार दक्ष और प्रवीण कलाकार चयनित करते हैं। ऐसी स्थिति में गवरी का मंचनकरने वाले अभिनेता कलाकारों की प्रतिभा को कैसे किस तरह वर्णित किया जाय जो अन्य किसी से भी अतुलनीय होकर अपने से अपने जैसे ही बने होते हैं।

वह चाय चम्मच से हिलाते-हिलाते

1997 के जून महीने की बात है जब मैं उदयपुर में राजस्थान विद्यापीठ की घटक संस्था साहित्य संस्थान में नौकरी करता था। उस समय डॉ. मोतीलाल मेनारिया हमारे निदेशक थे।

दिन को दो बजे करीब हमारी चाय बनती थी। पीने वाले हम पांच व्यक्ति थे सो पांच ही कप चाय बनती थी। चपरासी मेघराज ने चाय बना हमारे सम्मुख रख दी। एक कप डॉ. मेनारिया साहब को उनके कक्ष में पहुंचाना पड़ता था। उस दिन मेघराज ने कहा कि डाक्टर साहब की चाय में ऊपर से एक चम्मच अतिरिक्त डालने वाली शक्कर समाप्त हो गई है। हम सोच में पड़ गये। बाजार से शक्कर लाने में देर लगेगी तब तक चाय ठण्डी हो जायेगी सो हमने तै किया कि सदैव की तरह चाय को चम्मच से हिलाते दे आओ।

मेघराज सहमता-सहमता बेमन गया और चाय रख आया। कुछ देर बाद गया तो खाली कप ले आया। डॉक्टर साहब ने उसे कुछ नहीं कहा। कहा तो सिर्फ यही कि आज की चाय कुछ अलग से थी। उसमें कुछ डाला था क्या?

मेघराज मुस्कराता हुआ आया और बोला, आप लोगों का अन्दाज ठीक ही रहा। डॉक्टर साहब ने अच्छी से चाय पी ली और चाय की प्रशंसा की।

डॉ. मेनारिया समय के पक्के पाबन्द थे। साहित्य संस्थान में सेवानिवृत्ति के बाद उनका समय 3 से 5 बजे तक का था। एक दिन वे मुझे साहित्य संस्थान की सीढ़ियों पर बैठे मिले। उन्हें अचानक देख में हक्का-बक्का हो गया। मैंने पूछा, 'आप यहां कैसे?' वे अपनी घड़ी देख बोले, 'अभी दो मिनिट शेष हैं। मेरा समय ठीक 3 बजे से है।'

इसी प्रकार एकदिन विद्यापीठ के संस्थापक जनुभाई उर्फ जनार्दनराय नागर मिटिंग ले रहे थे। उसमें डॉ. मेनारियाजी भी आमंत्रित थे। मिटिंग चलते 5 बज गई। मेनारियाजी ने घड़ी देखते ही छतरी की डांडी ऊंची की और कहा, 'अच्छा जनुभाई!' जनुभाई बोले, 'अभी तो मिटिंग समाप्त ही नहीं हुई।' मेनारियाजी बोले, 'मेरा समय तो 5 बजे तक का ही है। संस्था आपकी है, आप चाहें तो रातभर ही मिटिंग करते रहें और तपाक से चल दिये।'

- म. भा.

महाकाल के दरबार में देवलोक का दर्शन

देवता के प्रति आस्था कुल और वंश से आरम्भ होती है और फिर गृह-गुवाड़, गली-गाँव, खेत-खलिहान, व्यापार-व्यवहार, व्याधि-उपचार, नगर से लेकर राष्ट्र के अभ्युदय तथा समृद्धि तक जाती है। देवता यायावर मानव के मायावर होने तक तक की कृपा के जनक रूप में भी हैं। देववाद की धारणा मानव की एक खोज है और खोजपूर्ण प्रतिष्ठा भी है।

यह अनूठा विषय इस अर्थ में है कि इसमें पचासों दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। लोकजीवन इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक समस्या और प्रत्येक समाधान उसी में निहित है। शास्त्र और लोक में पहले स्थान पर लोक है जो लिखे जाने पर शास्त्र हो जाता है।

देवलोक का सीधा और सहज सम्बन्ध नर-नारियों के निरोग, निरामय, न्याय, निमित्त, नैतिकता, नैवेद्य आदि से है। देव हमारे सोच-विचार, समुदाय, संगठन को दृढ़ता देते हैं। वे हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखते हैं और हम उन्हें गण-सा सम्मान देते हैं। वे दायक होकर आस्थाओं के नायक होते हैं। शताधिक पुराणों, महाकाव्यों और अनेकों तन्त्र ग्रन्थों से लेकर लोक एवं यायावर समुदायों तक देवलोक का विरुद मिलता है। यह संगोष्ठी इस अर्थ में स्मरणीय और उल्लेखनीय है कि इसमें देवलोक के उस पक्ष पर चर्चा रही जो ग्रन्थों से कहीं अधिक व्यावहारिक जन-जीवन के केन्द्र में सजीव रूप से है।

संगोष्ठी में उपस्थित विविध अंचलों के विशेषज्ञ

देववाद मानवीय संस्कृति की एक ऐसी प्रतिष्ठा है जिसके साथ विनम्रता जैसा गुण जुड़ा है तो मनोभावों का हिलोर लेता सागर भी सार्थकता प्राप्त करता है। देवता के प्रति आस्था कुल और वंश से आरम्भ होती है और फिर गृह-गुवाड़, गली-गाँव, खेत-खलिहान, व्यापार-व्यवहार, व्याधि-उपचार, नगर से लेकर राष्ट्र के अभ्युदय तथा समृद्धि तक जाती है। नीति से लेकर सभी प्रकार के बल देवत्व से जुड़े हैं। देवता निर्बल के बल हैं। आयुध से लेकर विजय के हेतु हैं, क्रान्ति से लेकर इष्ट-अभीष्ट की सफलता के सेतु हैं। वे पारिवारिक और सामुदायिक हैं। देववाद की अवधारणा सभ्यता के बीज के रूप में है तो संस्कृति की पहचान के चिन्ह के रूप में भी। इस प्रकार देवता यायावर (वन-प्रवृत्त) मानव के मायावर (धन-समृद्ध) होने तक तक की कृपा के जनक रूप में भी हैं। निश्चित ही देववाद की धारणा मानव की एक खोज है और खोजपूर्ण प्रतिष्ठा भी है।

डॉ. भानावत एवं डॉ. पारे

विमुक्त और घुमन्तू जातियों की देववाद की धारणा स्थिर जातियों के देववाद का मूलाधार है क्योंकि अभिजात्य वर्ग की रीतियों-नीतियों के सब बीज हमें यायावरों के वन में विकीर्ण मिलते हैं। जनजातीय लोककला एवं बोली विकास अकादमी तथा मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल इस विशद् विषय पर गम्भीरता से कार्य कर रही है और इसी क्रम में 9 से 11 सितम्बर, 2022 तक मालवा की प्राचीन राजधानी उज्जैन में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। त्रिवेणी कला संग्रहालय में सम्पन्न इस संगोष्ठी में देश-विदेश के विभिन्न अध्येताओं ने महत्त्वपूर्ण शोधपत्र पढ़े।

इसके उद्घाटन अवसर पर अकादमी के निदेशक डॉ. धर्मेन्द्र पारे ने स्पष्ट किया कि मानव की मूल गतिविधियाँ देवलोक से जुड़ी रही हैं, चाहे वे न्याय की हों अथवा उपचार, नृत्य, अनुष्ठान और आखेट की ही क्यों न हों। भाषा और भाव भी उनसे अलग नहीं। इस आयोजन के बहाने दस्तावेज का एक प्रयास किया जा रहा है ताकि उन सूत्रों को पहचाना जा सके जो देवलोक की मान्यताओं के विकास में सहायक रहे हैं। पचास से अधिक जातियों पर शोधकार्य किया जा रहा है और यह कार्य सीधे-सीधे उन जातियों के बीच रहकर ही सम्पन्न होगा। यह कार्य अगले पांच वर्षों तक चलेगा। नई सदी में यह कार्य अतीत का एक सार्थक अध्ययन होगा।

पुस्तक लोकार्पित करते डॉ. पारे, डॉ. भानावत एवं अमोल सरागे

हेल्डनबर्ग विश्वविद्यालय के शोधार्थी अश्विनी शर्मा ने विलियम सेक्स की पुस्तक गोड ऑफ जस्टिस् के हवाले से स्पष्ट किया कि देवलोक के मूल में मानव के न्याय की प्रवृत्ति रही है। यह सामाजिक न्याय तक पहुंचने की एक यात्रा है। मनौती अथवा मानता किसी उत्सव से कम नहीं, सामुदायिक उपचार इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है। उन्होंने कालबेलिया, जसनाथी समुदायों की अनेक रीतियों का उल्लेख किया और मेलों के मूल में भी देवलोक की मान्यताओं को रेखांकित किया। उन्होंने इस दिशा में महिलाओं की संख्यात्मक भूमिका, भोपा और उनके भाव तथा साधकों-आराधकों के हैरत अंगेज नृत्यों के उदाहरण भी दिए।

बीज वक्तव्य में लोकसंस्कृति के मनीषी डॉ. महेन्द्र भानावत ने सूत्रात्मक रूप से कहा कि यह अनूठा विषय इस अर्थ में है कि इसमें पचासों दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। लोकजीवन इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक समस्या और प्रत्येक समाधान उसी में निहित है। भारत में अनेक जातियां घूमती रही हैं और अब भी चलिष्णु हैं तथा उनसे संवाद से बात में बात को खोजा जा सकता है। उन्होंने भक्तिमती मीरांबाई और महाराणा प्रताप के चरित्र के उदाहरणों से कहा कि उनके अनेक पक्ष लोक के कंधों पर और लोक के कण्ठ पर चलायमान हैं। हम यहां अपने देवलोक की चर्चा कर रहे हैं जबकि यहां के महाकाल तो देवलोक के भी देवलोक हैं।

उन्होंने कहा कि शोध और शोधप्रबन्ध में अन्तर है। कैसे देखा और कैसे लिखा जाए, शोध में हड़बड़ी नहीं हो। उन्होंने भूतों तथा दिव्यात्माओं के मेलों की धारणाओं को रेखांकित किया और कोढ़ी सूर्यनारायण की कथा सुनाते हुए कहा कि शास्त्र और लोक में पहले स्थान पर लोक है जो लिखे जाने पर शास्त्र हो जाता है। इसकी शब्दावली पर ध्यान देना होगा। दक्षता से निर्णय देना होगा।

उन्होंने कहा कि देवलोक में हम देवताओं के लोक की बात तो करते ही हैं पर हमारे यहां तो जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है उसे भी 'देवलोक हो गया' कहने की परम्परा है। संगोष्ठी के पहले सत्र में रेबारी, नायका, बसदेवा और लोहपीटा समुदायों के देवलोक पर ज्योति बर्फा, डॉ. के. एस. बघेल, टिकमणि पटवारी और संगीतासिंह ने अपने शोधपत्र पढ़े। प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने बंजारा समुदाय के रीति-रिवाज एवं उनके देवलोक की लोकाश्रित धारणाओं को परिभाषित किया।

दूसरे दिन के सत्र में भारतविद्याविद् डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने घुमन्तू, विमुक्त, जनजातियों और लोक समुदाय सहित अभिजात्य वर्गों के देववाद की अवधारणा पर अपना विस्तृत व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा कि दक्षिण एशिया महाद्वीप में देवलोक की ऐसी मान्यता है जिसमें देवी-देवता मानव मात्र के अर्थ और काम विषयक मनोरथों को सिद्ध करते हैं, धर्माचरण चाहते हैं लेकिन मोक्ष नहीं दे सकते। देवलोक का सीधा और सहज सम्बन्ध नर-नारियों के निरोग, निरामय, न्याय, निमित्त, नैतिकता, नैवेद्य आदि से है। देव हमारे सोच-विचार, समुदाय, संगठन को दृढ़ता देते हैं। वे हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखते हैं और हम उन्हें गण-सा सम्मान देते हैं। वे दायक होकर आस्थाओं के नायक होते हैं। ऋग्वेद से लेकर वर्तमान काल तक के समाज में अनेक देवी-देवताओं की मान्यता रही है। मध्यकाल में शीतलादेवी और फिर मरीमाता आदि की मान्यता बढ़ी और अनेक देवताओं ने अपने गुणों से स्वयं को महत्त्व दिलवाया और मंगल के प्रतीक बने। बीमारियों के काल में भी अनेक देवता सम्मानित हुए। भारत देवत्त्व के गुणों के गान और सम्मान की भूमि है। शताधिक पुराणों, महाकाव्यों और अनेकों तन्त्र ग्रन्थों से लेकर लोक एवं यायावर समुदायों तक देवलोक का विरुद मिलता है। देवीपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, शिवधर्मोत्तर, शिवधर्म, कामिकागम, नन्दिकेश्वर पुराण, महाभारत, लक्षण समुच्चय, शारदातिलक जैसे अनेकों के ग्रन्थों सहित सुश्रुत एवं चरक मान्यताओं को भी इस दृष्टि से देखा सकता है।

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

संगोष्ठी में पूजा सक्सेना, दीपा दत्तात्रेय कुचेकर, बाला साहब अप्पा फूलमाली, डॉ. राजेश दत्तात्रेय झनकर, प्रो. सीमा पांडुरंग चिमनकर, प्रो. लक्ष्मीकान्त चंदेला, पहाड़ीलाल सिंह माना, डॉ. करणसिंह, डॉ. भुवनेश्वर दुबे, डॉ. पी. सी. लाल यादव, विभा ठाकुर, योग्यता भार्गव, भावना व्यास, नीलिमा गुर्जर, सूर्यकान्त भगवान भिसे, रामकुमार वर्मा, शिवम शर्मा, श्रीकृष्ण काकड़े, सुश्री उमा, विधिसिंह, मालिनी काले, इन्द्रनारायण ठाकुर आदि ने अपने शोधपत्रों का वाचन कर देवलोक के अनेक पक्षों को परिभाषित किया। यह संगोष्ठी इस अर्थ में स्मरणीय और उल्लेखनीय है कि इसमें देवलोक के उस पक्ष पर चर्चा रही जो ग्रन्थों से कहीं अधिक व्यावहारिक जन-जीवन के केन्द्र में सजीव रूप से है।

संगोष्ठी में देवताओं पर केन्द्रित 'चौमासा' के विशेषांक और पशु चारक : ठाट्या पुस्तक का विमोचन भी हुआ। चौमासा का अंक देवलोक की धारणाओं का पृष्ठ-प्रतिष्ठित आलय बनकर समारोह का हेतु बना है।

- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

उषा-कमल टीचर गुड़धानी

यह याद सन् 1988 के मेरे विद्यार्थी जीवन से जुड़ी हुई है। आठवीं तक मैं ऐसे विद्या निकेतन में पढ़ी जहां पढ़ाई कड़े नियमों में होती थी। अध्यापक भी वैसे ही थे। माता-पिता भी उन्हीं के पक्षधर थे। कहते बिना मार खाये विद्या चढ़ती नहीं है। यह कहावत सुनाते 'चंटी बाजै चमचम, विद्या आवै घमघम।'

नवमीं में जब विद्यालय बदला तो मुझे लगा जैसे मैं पिंजरे से निकल पंछी की तरह आजाद हो गई हूं। अपने नृत्यगीत की वे पंक्तियां याद हो आईं जिनसे मैं पूरे विद्यालय की आंखों का तारा बन गई थी। वे पंक्तियां थीं-

पंछी बनूं उड़ती फिरूं, मस्त गगन में।
आज मैं आजाद हूं, दुनिया के चमन में।।

स्कूल में नृत्य एवं गायन की प्रतियोगिता में मैंने जो सम्मान तथा पुरस्कार पाया उससे मैं अपने माता-पिता की भी कुहकती कोयलिया बन गई थी। गर्व से उनका सीना फूल के कुप्पा हो गया था। यही क्यों, स्कूल की क्लास टीचर उषा बोसमेन तथा प्रिंसिपल कमल कांता भटनागर का स्मृतिशेष भाव आज भी मेरे हृदय की आंखों में मूर्तिवंत बना हुआ है।

यहां में 9वीं कक्षा पास नहीं कर सकी पर प्रिंसिपल भटनागर और उषा मेडम ने अफसोस व्यक्त करते दसवीं बोर्ड की परीक्षा प्राइवेट देने का सुझाव दिया। विद्यालय की नियमित छात्रा के साथ अलग से मेरी एक्स्ट्रा क्लास लेते मेरा हौंसला बढ़ाया जिससे मेरी नैया अच्छी तरह पार हो गई। सचमुच में उषा-कमल जैसी गुरु मेरे लिए गुड़धानी ही थीं।

- रंजना भानावत

बाजार / समाचार

एचडीएफसी बैंक व एनईएसएल में साझेदारी

उदयपुर (ह. सं)। एचडीएफसी बैंक नेशनल ई-गवर्नेंस सर्विसेज लि. (एनईएसएल) के साथ साझेदारी में इलेक्ट्रॉनिक बैंक गारंटी जारी करने वाला देश का पहला बैंक बन गया है। इसके पहले यह व्यवस्था कागज आधारित था। इलेक्ट्रॉनिक बैंक गारंटी जैसी नई व्यवस्था आने से कागज आधारित प्रक्रिया को अब समाप्त कर दिया गया है। इस कारण अब इलेक्ट्रॉनिक बैंक गारंटी बेहद तेजी के साथ सत्यापित करने के साथ ही और भी ज्यादा सुरक्षा के साथ तुरंत वितरित की जा सकती है।

एचडीएफसी बैंक के ग्रुप हेड-ऑपरेशंस भावेश जावेरी ने कहा कि डिजिटलीकरण के कारण हमारे दृष्टिकोण को सार्थक बनाने में बहुत सहायता प्राप्त हुई है। इलेक्ट्रॉनिक बैंक गारंटी के कारण अब एमएसएमई के लिए बिजनेस करना और भी आसान हो जाएगा। इलेक्ट्रॉनिक बैंक गारंटी प्रक्रिया किसी भी तरीके के धोखाधड़ी एवं हेरफेर की संभावना खत्म कर देती है। इलेक्ट्रॉनिक बैंक गारंटी को एनईएसएल, सीवीसी-सीबीआई समिति और आईबीए के परामर्श से विकसित किया गया है। ई-बीजी एनईएसएल पोर्टल पर एपीआई आधारित डिजिटल वर्कफ़्लो के माध्यम से जारी किया जाएगा।

गीतांजली को मिले दो गोल्ड, दो सिल्वर

उदयपुर (ह. सं)। क्वालिटी सर्किल फोरम ऑफ़ इंडिया राजसमंद चैप्टर के तहत 21 चैप्टर कन्वैक्शन- 2022 का आयोजन किया गया। इसमें गीतांजली

यूनिवर्सिटी के एचआरबीपी डॉ. राजीव पंड्या के निर्देशन में चार टीमों ने भाग लिया। पहली टीम कार्डियक सर्जन डॉ. संजय की रही जिसमें उन्होंने 'एक्मो मशीन' पर प्रेजेंटेशन देकर गोल्ड हासिल किया। ब्रांडिंग व पीआर मैनेजर हरलीन गंभीर ने 'ट्रान्सफर टू लर्न जनरल मीडिया प्रोसेस ओन सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स' पर प्रेजेंटेशन देकर गोल्ड हासिल किया, वहीँ एच.आर से सीनियर ट्रेनिंग मेनेजर राधिका सुवालका ने 'मास्टरमाइंड' पर प्रेजेंटेशन देकर सिल्वर व क्वालिटी एग्जीक्यूटिव आयुषी राठौर ने 'क्वालिटी बियॉन्ड एक्रीडीयेशन' पर प्रेजेंटेशन देकर सिल्वर में अपनी जगह बनाई। गीतांजली हॉस्पिटल के सी.ई.ओ. प्रतीम तम्बोली ने सभी टीमों को बधाई दी।

एथर एनर्जी के रिटेल आउटलेट का शुभारंभ

उदयपुर (ह. सं.)। इलेक्ट्रिक स्कूटर बनाने वाली भारत की प्रमुख कंपनी एथर एनर्जी ने अखंड डिस्ट्रिब्यूटर्स के सहयोग में अशोक नगर में अपने नये एक्सपीरियंस सेंटर का शुभारंभ किया है। हाल ही में लॉन्च किए गए तीसरी जेनरेशन के प्रमुख स्कूटर एथर 450 और 450 प्लस एथर स्पेस पर टेस्ट राइड और खरीदारी के लिए उपलब्ध होंगे।

एथर एनर्जी के चीफ बिजनेस ऑफिसर रवनीत एस. फोकेला ने कहा कि राजस्थान में हमारा दूसरा एक्सपीरियंस सेंटर है। एथर 450 के तीसरे जनरेशन के लॉन्च से हमें आने वाले महीनों में उपभोक्ताओं की मांग बढ़ने की आशा है। अखंड डिस्ट्रिब्यूटर्स के निदेशक सत्यजीतसिंह छाबड़ा ने कहा कि पिछले एक साल में इस ब्राण्ड और प्रोडक्ट पर हमारा भरोसा कई गुना बढ़ा है। एथर एनर्जी उन चुनिंदा ओरिजनल इक्विपमेंट मैन्युफैक्चरर्स में से एक है, जोकि चार्जिंग इंफ्रास्ट्रक्चर में भी निवेश करता है। उदयपुर में अभी 2 एथर ग्रिड्स हैं, जो एथर का तेज चार्जिंग वाला नेटवर्क बनाती हैं। कंपनी ने चार्जिंग नेटवर्क को मजबूती देने के लिये शहर में 8-10 और भी ग्रिड्स जोड़ने की योजना बनाई है। 450 जेन3 की कीमत 1,46,471 रुपये और 450 प्लस की कीमत 1,24,961 रुपये (एक्स-शोरूम प्राइस) होगी।

साहिल ने जीता सर्वश्रेष्ठ गोलकीपर का पुरस्कार

उदयपुर (ह. सं.)। जिंक फुटबॉल अकादमी के 16 वर्षीय साहिल पूनिया ने श्रीलंका के कोलंबो में सैफ अंडर -17 चैम्पियनशिप में भारत के लिए अपने

पदार्पण में सर्वश्रेष्ठ गोलकीपर का पुरस्कार जीता। हरियाणा के हिसार के लाड़वा गांव में जन्मे साहिल पूनिया ने टूर्नामेंट में खेले गए चार मैचों में से दो क्लीनशीट दर्ज की, जिनमें से एक नेपाल के खिलाफ फाइनल में थी। साहिल को इस साल अप्रैल में गोवा में जिंक फुटबॉल अकादमी के एक्सपोजर टूर में उनके आकर्षक प्रदर्शन के बाद राष्ट्रीय शिविर में शामिल किया गया था। उन्होंने निश्चित रूप से राष्ट्रीय मुख्य कोच बिबियानो फर्नांडीस द्वारा उन पर दिखाए गए विश्वास को चुका दिया है। साहिल के पिता संदीप पूनिया ने कहा कि मुझे साहिल पर गर्व है क्योंकि भारत के लिए खेलना उसका सपना था। अपने पहले अंतर्राष्ट्रीय टूर्नामेंट में सर्वश्रेष्ठ गोलकीपर का पुरस्कार जीतना सबसे बड़ी खुशी की बात है।

एसेंट संस्थान के विद्यार्थी बने उदयपुर टॉपर

नीट में मोहम्मद हम्जा एवं जेईई एडवान्स्ड में लक्ष्य गढ़वाल ने प्रथम स्थान हासिल किया

उदयपुर (ह. सं.)। एनटीए द्वारा जारी नीट परिणाम में उदयपुर के प्रतिष्ठित कोचिंग संस्थान एसेंट के विद्यार्थी मोहम्मद हम्जा ने राष्ट्रीय स्तर पर 109 रैंक प्राप्त कर उदयपुर में प्रथम स्थान अर्जित प्राप्त किया है। इसी तरह जेईई एडवान्स्ड 2022 में एसेंट के विद्यार्थी लक्ष्य गढ़वाल ने ऑल इण्डिया रेंक 64वीं (केटेगरी रेंक 09 रेंक) प्राप्त कर पूरे उदयपुर शहर में प्रथम स्थान अर्जित किया। इसके साथ प्रियांशी झा ने भी ऑल इण्डिया रेंक 1917वीं प्राप्त कर पूरे उदयपुर शहर में छात्राओं में प्रथम स्थान अर्जित किया।

संस्थान के प्रबन्ध निदेशक मनोज बिसारती ने बताया कि नीट के चयनित विद्यार्थियों में मोहम्मद हम्जा (109 रैंक), हर्ष मुण्डानिया (117 रैंक), आशिष गेहलोत (130 रैंक), मोती (279 रैंक), भानुप्रताप देवरा (304 रैंक), शिवान अवस्थी (474 रैंक), आयुशी चौधरी (487 रैंक), शेखर (596 रैंक), चयांक (868 रैंक), दिपेश करोटिया (875 रैंक), गर्वित भगोरा (877 रैंक), गंगाप्रसाद जाट (953 रैंक), ज्योतिरादित्य सिंह (972 रैंक) ने उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए राट्रीय स्तर पर टॉप 1000 रैंको में अपना स्थान बनाया है। इनके अलावा निकिता, विष्णुकुमार पटेल, निखिल विरंची दाधीच, अवन्तिका पाटीदार, जयश्री, जान्हवी जोशी, जान्हवी पांचाल, जिज्ञासा तेजावत, विशाल मोरी, देवेन्द्र सिसोदिया, निखिल विरवाल एवं जिगीशा दलावत ने भी टॉप 2000 रैंक में अपना स्थान बनाया है।

इसी तरह भारत की सबसे कठिन परीक्षा जेईई एडवान्स्ड 2022 में लक्ष्य गढ़वाल 64वीं (केटेगरी रेंक 09 रेंक), प्रियांशी झा 1917वीं रैंक, जेनित जैन 1253वीं (केटेगरी रेंक 138), श्रेयस बाबेल 3891वीं रेंक (केटेगरी रेंक 448), आर्यन जैन 3950वीं (केटेगरी रेंक 454 रेंक), गर्व मुदंडा 5321 (केटेगरी रेंक 639 रेंक), भावेश तनन (केटेगरी रेंक 882 रेंक) ने उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। इनके साथ ही अभिजीत दीक्षित, करणकुमार धोते, नक्षत्रसिंह झाला, निशान्त पालीवाल, भविश जैन एवं हिमाशु मेघवाल ने भी उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।

प्रबंध निदेशक मनोज बिसारती, अकादमिक निदेशक मुकेश बिसारती, प्रबंधक मंगलाराम देवासी, अकादमिक विभागाध्यक्ष रवि रंजन, आईआईटी प्रबंधक तरूण मंशानी, अवनीशप्रताप सिंह, युवराजसिंह, दिनेश कुमावत, आशिष जैन, कृष्णकुमार सोन, राजीव पंचोली, चिंतन जोशी, मंयक दक सहित सभी अध्यापकगण ने विद्यार्थियों को बधाई दी और उनके उज्वल भविष्य की कामना की।

उदयपुर में 'Goa@60' का आयोजन

उदयपुर (ह. सं.)। पुर्तगाली शासन से मुक्ति के 60 वर्ष पूर्ण होने के साथ-साथ गोवा सरकार ने Goa@60 कार्यक्रम का आयोजन किया है। सरकार ने 19 दिसंबर, 2021 से भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की विशिष्ट उपस्थिति में आयोजित कार्यक्रमों के साथ अपनी मुक्ति की हीरक जयंती सफलतापूर्वक मनाई। इसके बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में अनेक कार्यक्रमों का आयोजन भी हुआ। यह जानकारी प्रेसवार्ता में गोवा पर्यटन विभाग के उप निदेशक राजेश काले, जीटीडीसी उप महानिदेशक दीपक नारवेकर, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग गोवा के जनसंपर्क अधिकारी ओल्विन परेरा, पर्यटन विभाग गोवा के सहायक निदेशक रोड्लिन मसकोनस तथा सहायक जनसंपर्क अधिकारी गोवा किरण मुनानकर ने दी।

उन्होंने बताया कि गोवा में शानदार समारोह के आयोजन के बाद सरकार गोवा के लोगों के साथ मिलकर इस वर्ष पूरे देश में भव्य समारोहों का आयोजन करेगी। अहमदाबाद से शुरू होकर यह राष्ट्रव्यापी उत्सव अब उदयपुर में आ गया है। इसका आयोजन 16 से 18 सितंबर तक सेलिब्रेशन मॉल, भुवाणा में होगा। फिर यह उत्सव वाराणसी, मदुरै, तिरुवनंतपुरम और मैसूर जैसे शहरों में होगा। उदयपुर में विभिन्न लाइव कार्यक्रमों के माध्यम से गोवा के व्यंजनों, संगीत, नृत्य, संस्कृति और परंपराओं की झलक मिलेगी। वहां के स्वदेशी 'बैंड दी क्लिक्स, स्टील' के साथ-साथ 'गोवान डांस ट्रूप' का डान्स मुख्य आकर्षण होगा। इसमें 'दी किंग मोमो - फेस ऑफ गोवा कार्निवल' की प्रसिद्ध परेड भी शामिल होगी।

समारोह के बारे में गोवा के मुख्यमंत्री डॉ. प्रमोद सावंत ने कहा कि हमें राज्य की मुक्ति के बाद से गोवा सरकार की बहुमुखी उपलब्धियों को प्रदर्शित करने में अत्याधिक प्रसन्नता हो रही है। राज्य ने सुशासन से लेकर खेल, कला और संस्कृति, पर्यटन, शिक्षा, हेल्थकैयर(स्वास्थ्य देखभाल) और कई अन्य क्षेत्रों में असीम विकास किया है। अधिक पर्यटकों और निवेशकों को समान रूप से आकर्षित करने की एक पहल है जो इंफ्रास्ट्रक्चर(बुनियादी रचना), कृषि, पर्यटन, परिवहन, आईटी एवं सुरक्षा को और बढ़ावा देगा जिससे गोवा में जीवन की गुणवत्ता में सुधार होगा। इसके साथ, हमारा लक्ष्य गोवा को वैश्विक नक्शे पर भी लाना है।

छह राज्यों के प्रमुख अधिकारियों के साथ गोवा सरकार के शीर्ष अधिकारी इस समारोह में शामिल होंगे। वे गोवा में सुशासन, सेवाओं के डिजिटलीकरण, शिक्षा के स्तर में सुधार और औद्योगिक विकास और रोजगार के अवसरों में वृद्धि, हरित आवरण की रक्षा और संरक्षण के प्रयासों, गोवा की विरासत को पुनर्स्थापित और संरक्षित करने के प्रयासों के माध्यम से गोवा की 360 डिग्री प्रगति के बारे में जानकारी देंगे। गोवा सरकार आने वाले वर्षों में मोपा में नए अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे, सूचना प्रौद्योगिकी(आईटी) के विकास, पर्यटन के लिए नई सेवाओं, बेहतर परिवहन सुविधाओं, स्थानीय आबादी और राज्य के पर्यटकों की सुरक्षा के पुख्ता इंतजाम और इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास के साथ गोवा को और अधिक ऊंचाइयों तक ले जाने के लिए अपने रोडमैप और विज़न को हाईलाइट करेगी।

नई ऑडी क्यू3 का उदयपुर में रोड़ शो

उदयपुर (ह. सं.)। जर्मनी की लक्जरी कार निर्माता ऑडी अपने अखिल-भारतीय रोड शो के तहत उदयपुर में नई ऑडी क्यू3 का प्रदर्शन करेगी। 17-18 सितंबर को ऑडी उदयपुर में यह जर्मन-स्पेक शो कार प्रदर्शित की जाएगी। यह रोड शो ग्राहकों को नई ऑडी क्यू3 की डिलीवरी से पहले करीब से देखने का मौका देगा।

ऑडी इंडिया के प्रमुख बलबीरसिंह ढिल्लन ने कहा कि हम नई ऑडी क्यू3 को भारत में लॉन्च करने पर बहुत उत्साहित हैं। हम डिलीवरी से पहले ग्राहकों को नई ऑडी क्यू3 करीब से देखने का मौका देना चाहते हैं। मुझे पक्का यकीन है कि संभावित ग्राहक, ब्रांड के दीवाने और ऑडी क्यू3 के प्रेमी नई ऑडी क्यू 3 को देखने के लिए उतना ही उत्साहित होंगे जितना कि हम इसे दिखाने के लिए हैं। ऑडी क्यू3 भारत में अपने सेगमेंट की अग्रणी कार रही है और इसने नये अवतार में वापसी की है। ओरिजिनल ऑडी क्यू3 ने अपने जमाने की गेमचेंजर थी और इसकी अपनी फैन-फॉलोईंग है। नई ऑडी क्यू3 अत्याधुनिक डिजाइन, शानदार इंटीरियर, दमदार इंजन के साथ इसी कहानी को आगे बढ़ाएगी।

देवी-देवताओं की.....

(पृष्ठ एक का शेष)

धातु, रत्न आदि में देव विराजमान होते हैं, ऐसे संदर्भ अगस्ती मत, रत्न परीक्षा आदि में मिल जाते हैं। कभी रूपदर्शक जैसा शास्त्र इनकी परीक्षा के लिए उपयोगी था जैसा कि चाणक्य ने कहा है। गढ़ाई में ये आभूषण से कम नहीं, कला और कारीगरी दोनों ही दृष्टि से।

इसके पर्याय हैं - फूल, फूला और फूलड़िया / मादलिया और मामादलिया, नांवा, देवनामा और दर्शन / पूतली या फूतली और रूपागल, चौकी या चौकियां।

चांदी जो मेवाड़ के जावर, आंगूचा, दरीबा आदि में बहुत प्राचीन काल से मिलती आई है और देवपद के योग्य मानी जाती है, ऐसे में उसका खूब उपयोग हुआ। ये अमूमन चांदी के बनते हैं। मुद्रिका जैसे होने से मुद्रा, सिक्का, मुहर जैसे आकार वाले और रचना में चौकोर, पंचकोण, छहकोण होते हैं या फिर वृत्ताकार, तांबूल पत्र जैसे भी बनाए जाते हैं। जैसा देवरूप, वैसा ही उस पर उभार वाला अंकन! श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार सवा दो, सवा पांच, सवा सात, सवा नौ और सवा ग्यारह तोला चांदी का प्रयोग होता है। हर अंग के अपने नाम - पड़ा, पड़द, कोर, कोट, कांगरा, पीपली, वेच, कड़ी, आंकड़ी... आदि।

डॉ. महेन्द्र भानावत के अनुसार भील, मीणा, गरासिया ही नहीं, राजस्थान की लगभग हर सामाजिक सेवा धर्म से जुड़ी जातियां, श्रेणी बैठकी, कृषि धर्म को धारण करने वाले समुदाय ऐसे मादलिया धारण करते हैं।

यह आत्मिक खुशी और पारस्परिक सम्मान का प्रतीक भी है। गुर्जर, रायका, रेबारी आदि में इसे लेकर बड़ी आस्था है। जब इसको धारण किया जाता है तो विवाह की तरह का 'नांवा संस्कार' आयोजित होता है। बंधु बांधवों के यहां बिनोला खाना और फिर जात जीमन होता है। इसको धारण करने की अपनी मर्यादाएं हैं, सीमाएं हैं, नियम हैं! (उदयपुर के आदिवासी)

यह प्रतीक प्रत्येक लोकदेवी-देवता का हो सकता है। बहुत ही कलात्मक और सृजनात्मक। जैसे - काला और गोरा भैरूजी, धर्मराज यानी देवनारायण, राडा रूपन, मामादेव, खाखलदेव, ताखाजी यानी तक्षक नामक नागदेव, गोगाजी, भूनाजी, भोजाजी आदि।

घर के पूरबज यानी पूर्वज बावजी की पुतली छोटी होती है। ये धागे में पिरोकर बांधी जाती है लेकिन यह धागा कपास का नहीं होता। भेड़ की ऊन को कातकर बनाया जाता है। परिवार में बालक होने पर नांवा में बधापा करवाया जाता है। तब भोज होता है।

स्त्री पूर्वज होने पर मातलोक कहे जाते हैं। बालक और बालिका पूर्वज होने पर करंडक (बेंत की टोकरी) में विराजित किए जाते हैं। मेवाड़ के गांवों में ऐसा कोई कृषिजीवी घर नहीं होगा जहां नांवा नहीं मिले। बड़े जतन से रखा जाता है। पूजा भी जाता है। ऐसा कोई आस्तिक व्यक्ति नहीं होगा जिसमें नांवा धारण करने वाले को नमन नहीं किया हो।

(मेरी : भारतीय लोक माध्यम)

उदयपुर जिले के कानोड़, लकड़वास, धरियावद, आकोला जैसे गांव इनके निर्माण के लिए प्रसिद्ध हैं। कानोड़ की खास पहचान है। वहां के श्री रमेश सोनी और उनके परिजन मंजे हुए कलाकार हैं। उनकी दोद्वारी (दोफड़ी) दुकान देवद्वारी सिद्ध हुई जहां से अनेक नांवा श्रद्धालुओं के हियहार हुए। सौ साल की बातें तो याददाश्त में हैं ही। अनेक पीढ़ियों की दक्षता लिए है जैसा कि भूपेन्द्र मल्हारा कहते हैं।

सोनी परिवार सांचा, ठप्पा की उसी विधि से बनाते हैं जैसे टकसाल में सिक्के बनाए जाते थे। उदयपुर के भारतीय लोककला मण्डल में ऐसे अनेक नांवाओं, मादलियों का अच्छा संग्रह है। कुछ पारंपरिक और कुछ नवीन विषय वाले हैं। रामनोमी सोने की बनती है लेकिन उसका सम्बन्ध शोभा और सौंदर्य से ही है।

मानव ने अपनी पहचान के अनेक प्रयास किए हैं। शरीर पर जन्मजात चिह्न लासन और लांछन कहे जाते हैं।

सामुद्रिक शास्त्र क्या कहता है? संहिताओं में कितने सन्दर्भ हैं? अंग विद्या के क्या प्रतिपादन हैं? उष्णिष, पेच, पगड़ी, साफा, हार, चौसर, हंसली सहित गुदना से अपनी पहचान दिखाई तो मुद्रिका, चूड़ामणि क्या थे? प्रतिमा नाटक, शकुंतला, रघुवंश, रामकथा में भी ऐसे चिह्नों पर चर्चा है। क्या कहीं नांवा भी नामलेवा है, जबकि इसका बहुत प्रचलन है। वस्तुत: यह लोकाश्रय में अविस्मरणीय है।

जनजातियों में भरावा....

(पृष्ठ तीन का शेष)

भरने की इस क्रिया के बाद जिस आकार की जो वस्तु बनती है उसे आकार में ढालना कहा जाता है यानी कोई आकृति पूरी बनने पर ही ढलाई प्रक्रिया द्वारा संपन्न होती है अर्थात् धातु मिश्रित माल भरने के बाद जो पूर्णता कोई वस्तु प्राप्त करती है वह उसकी ढलाई कही जाती है। यह इतना सूक्ष्म भेद है कि इसे बिल्कुल अलग कर नहीं देखा जा सकता। अन्य कलाकार, जो भरावा जाति के नहीं हैं और इस कार्य को परंपरागत रूप में करते आ रहे हैं, उनमें भरने की बजाय ढालने की ही बात कही जाती है।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि कांकणे, पागड़े तथा पिंजणी जैसी चीजें प्रारंभ में अलग-अलग बनाकर फिर भरने से पूर्व सुविधानुसार चार-चार, छह-छह, आठ-आठ की संख्या में संयुक्त करली जाती हैं। उसके बाद ही एक साथ उनमें भराई की जाती है। भराई करने के बाद जब वे ठंडी हो जाती हैं तब अलग कर ली जाती हैं। इससे समय की बचत के साथ जो धातु भरनी होती है वह एक साथ भरने से उसका जरा भी दुरूपयोग नहीं हो पाता है। यह कार्य अधिक सुविधाजनक होता है।

ढलाई सर्वाधिक तो आभूषणों की ही की जाती है। इन आभूषणों को ग्रामीण औरतें अधिक पहनती हैं। आदिवासी महिलाओं में भरावों से बने आभूषण ही पहने जाते हैं। आभूषण की यह सजावट हाथ और पांव में अधिक रहती है। पांव में नीचे एड़ी से लेकर पिंडली के ऊपर तक सात नंग पहने जाते हैं। इनमें पावड़े और पिंजनियां पहनी जाती हैं।

पिंजनियों में एक दांता वाली, चार सादी तथा एक वाजणी होती है जबकि पावड़ा एक ही पहना होता है। हाथ के नीचे के हिस्से में काकनी, माटली, गानी और करमदी पहनी जाती है जबकि ऊपर लाख का चूड़ा पहना जाता है। इनमें अलग-अलग भांतें (डिजाईन) होती हैं। ये भांतें अंचल अथवा क्षेत्रानुसार पहचान कराती हैं जैसे सलूम्बर की ओर रहने वाली भीलनियां और मीणियां हरूमरी (सलूम्बरी) भांत की पिंजनियां पहनेंगी लेकिन बांसवाड़ा अंचल में निवास करने वाली महिलाएं बांसवाड़ी छाप की पिंजनियां पहनना ही पसंद करेंगी।

आजादी के बाद के पच्चीस वर्ष तक तो भरावी कला की गति ठीक रही। उसके बाद के वर्षों में जो कीमतें बढ़ीं उससे भी इस कला कारीगरी को बड़ी ठेस पहुंची है। पहले पिंजणी के एक नंग की कीमत एक रूपया थी जो बढ़कर 20-25 रूपया हो गई। सादा पिंजणी तो एक रूपये से भी कम में मिलती थी। भैरू का एक घूघरा पांच रूपये में बनाया जाता था। अब उस घूघरे का सौ रूपया लिया जाता है किंतु अब घूघरों की इतनी बिक्री नहीं होती जितनी पहले होती थी। पहले भैरूजी के भोपे आये दिन अपने कंधे पर भैरू झोली लटकाये बस्ती में निकलते थे और प्रत्येक घर को मयूर पंख का झाड़ा देकर दुष्ट आत्माओं से बचाये रखते थे। जिस घर में कोई बीमार होता उसका इलाज किया जाता। यह भोपा अपनी कमर में पांच अथवा सात की संख्या में बड़े-बड़े घूंघरू लटकाये रहता। इनमें से एक घूंघरू पर भैरू का उभरांकन रहता। एक घूंघरू पांच सौ ग्राम से भी अधिक का होता। अब भैरू भोपा कहीं दिखाई नहीं देता।

घूंघरू के अलावा गायों-भैंसों के गले में बांधने के घूंघरे भी ढाले जाते हैं। आदिवासी लोग बड़े शौक से इन्हें खरीदते हैं। नाचते समय पांव में बांधने के घूंघरू सर्वाधिक मात्रा में बनाये जाते हैं। उनसे छोटे घूंघरू भी ढाले जाते हैं जिनका प्रयोग हाथों में पहनकर वाद्यों के साथ बजाने, बछड़े-बछड़ियों के गले में बांधने, छोटे बच्चों को नचाने जैसे कई कार्यों में होता है।

इसी तरह छोटी-छोटी घंटियां और उससे बड़ी विभिन्न आकार-प्रकार की घंटिया और भांति-भांति के घंटे ढाले जाते हैं। घंटियां पूजा आदि के समय बजाने के काम आती हैं जबकि घंटे मंदिरों-देवरों आदि देवस्थानों में लटके रहते हैं जहां हर आने वाला व्यक्ति उसे बजाकर अपनी उपस्थिति का एहसास करते हुए भगवान को नमन करता है।

ये घंटे ऑर्डर के अनुसार बनाये जाते हैं। ऐसा ही एक घंटा मेवाड़ के बहुप्रसिद्ध आवरी माताजी के मंदिर में लगा हुआ है जो करीब दस किलो का है।

मेवाड़ में कई मंदिर ऐसे हैं जहां एक साथ एक से अधिक घंटे-घंटियां छोटे-मोटे कई आकारों में देखने को मिलेंगे। घंटे पर कुछ लोग विभिन्न देवी-देवता तथा धार्मिक पक्षी का चित्र बनवाते हैं। तब चित्र के अनुसार उस घंटे का नाम प्रचलित हो आता है। ऐसे गरूड़ के चित्र वाला घंटा 'गरूड़ घंट' कहलाता है।

मंदिरों में कई जगह शिवजी और ताखाजी की जगह सांप के आकार की बड़ी भव्य मूरत (मूर्ति) बनाई जाती है। ऐसी स्थिति में पूरा सांप गोलाई लिए फन उठाते हुए मोम का बनाया जाता है और इस मोम की खोल पर मिट्टी के परत चढ़ाये जाते हैं। भरावे तब मोम की इस पूरी खोल को पीतल मिश्रित तांबे के घोल से भरकर बड़ी ही आकर्षक मूर्ति निर्मित करते हैं।

भरावा द्वारा धातु की भराई कर जो कलाकृतियां बनाई जाती है उनमें केरी (आम), नारेल (नारियल), माछरी (मछली), हूड़ा (तोता) भांत हूक्के तथा विभिन्न आकार-प्रकार और बेल-बूंटों से अलंकृत चिलमें पहले बड़ी संख्या में बनाई जाती थीं किंतु अब हूक्कों का चलन तो बिल्कुल समाप्त हो गया। चिलमें भी पन्द्रह-बीस वर्ष पहले तो फिर भी बनाई जाती थी किंतु अब तो इनका चलन भी नहीं रहा।

पहले बड़े लोग अपने हाथों में छड़ियां रखते थे। इन छड़ियों को अधिक खूबसूरती देने के लिए इनके मूठ लगाई जाती थी। यह मूठ विविध जानवरों तथा पक्षियों के चेहरे की शक्ल में बनाई जाती थी। ऐसी मूठों में शेर, भैंसा, घोड़ा, हाथी, हिरण, गैंडा, गरूड़, मोर आदि के मुंह वाली छड़ियों का प्रचलन अधिक था।

यही नहीं, कई तरह की पुतलियां ढाली जाती थीं। इनमें सणगारी पूरी की पूरी आभूषणों से सजी हुई होती थी। पणिहारी पुतली के सिर पर बेवड़ा बनाया जाता था। बच्चा पुतली की गोद में बच्चा रहता था। इसी प्रकार बच्चों को दूध पिलाती हुई, पांव का कांटा निकालती हुई, अंगड़ाई लेती हुई, केस सज्जा करती हुई, नाच का ठुमका लेती हुई अनेक प्रकार की पुतलियां बनाई जातीं।

ऐसी ही अनेक प्रकार की गाड़ियों में घोड़ा गाड़ी, बैल गाड़ी, हिरण गाड़ी, शेर गाड़ी, बकरा गाड़ी, पाड़ा गाड़ी बनाई जाती। ऐसे ही रथ बनाये जाते। कई तरह के दीपक बनाये जाते। इनमें आरती के लिए दीपक श्रृंखला बनाई जाती। डंडेनुमा दीपक पर एक के नीचे एक उतारवाले चारों ओर दीपक बनाये जाते।

मंदिरों में दीप सज्जा के लिए बड़ी तादात में दीपक बनाये जाते। दीवाली पर इनका ठाठ देखते ही बनता। इनके निर्माण में पुरा प्रतीकों का प्रयोग बखूबी किया जाता। इन प्रतीकों में हाथी, मयूर, कछुआ, सांप, मछली, शेर आदि के प्रतीक उल्लेखनीय हैं। इनमें हाथी बुद्धिमानी का, मयूर सौंदर्यानुभूति का, कछुआ संयम का, सांप क्षमा का, मछली शुद्धता का तथा शेर अहिंसा का प्रतीक कहा जाता है। इसके अलावा बच्चों के लिए जानवरों तथा पक्षियों के खिलौने तैयार किये जाते। पानी के जीवों में मगर, मछली और कछुआ खूब बनाये जाते।

लक्ष्मी का वाहन उल्लू कई आकारों में बनाया जाता। यह उल्लू अंधकार को भेदने का ही प्रतीक नहीं अपितु तंत्र साधना का भी महत्वपूर्ण पक्षी माना गया है। दीवाली की रात को उल्लू की खोपड़ी के साथ साधक लोग कई प्रकार के प्रयोग करते देखे जाते हैं।

ऐसी ही काजल की कजरोरी बनाई जाती है। इसमें हिरण, मछली, मगर और छिपकली के प्रतीक देखने को मिलते हैं। लोक में आंखों की उपमा मृगी और मछली से तो दी ही जाती है किंतु मगर और छिपकली के मुंह के कोये भी उसी तरह निकले हुए होते हैं जैसे कजरारी आंखों वाली सुंदरी के निकले होते हैं। इन प्रतीकों में यौन भाव से जुड़े प्रतीक भी देखने को मिलते हैं जो लोक की उन्मुक्त धरोहर बने हुए हैं।

मंदिरों में ठाकुरजी को झुलाने के लिए कई तरह की धार्मिक अनुकृतियों के उभार वाले झूले मिलते हैं जो भरावी कला के जीवंत प्रतीक कहे जाते हैं। इनके अलावा घरों में झूलने के सामान्य किंतु विविध पुतलियों, हाथी, घोड़ों तथा मोर, हिरण आदि से संयुक्त कलात्मक हिंडोले देखकर भरावी कला की सौंदर्य रचना का अनुमान लगाया जा सकता है।

मेवाड़ में विभिन्न स्थानों पर लगने वाले मेलों में भरावों द्वारा बनाई जाने वाली चीजें बड़ी संख्या में बेची जाती रही हैं। इन मेलों में बेणेश्वर, जरगाजी, केशरियाजी, महादेवजी, एलवामाता, सीतामाता, सांवरियाजी, चारभुजाजी का मेला ऐसे मेले हैं जिनमें भरावे अपनी बनाई चीजें बेचकर अच्छी कमाई करते हैं। लेखक ने इन सभी मेलों में भाग लेकर मेलार्थियों के जीवन-परिवेश तथा कलाजनित सौंदर्य चेतना का बखूबी अध्ययन किया किन्तु अब वह रौनक देखने को नहीं मिलती।

लेकिन अब इन मेलों में भरावों की दुकानें बहुत कम देखने को मिलती हैं। अब इनकी बजाय मशीनों से बनने वाले बर्तनों एवं खिलौनों की दुकानें बड़ी संख्या में मिलती हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि मशीनों से निर्मित चीजों की तुलना में भरावों द्वारा निर्मित कलाकृतियां उतना आकर्षण नहीं देतीं और न वे सस्तापन लिए होती हैं।

भरावों ने बताया भी कि अब उनसे यह भाड़मार मजदूरी नहीं होती। चीजें बनाने के लिए बैठक बहुत लगानी पड़ती है। भराई के लिए पहले हर घर से पीतल, तांबा, कांसा तथा अन्य धातु की फूट मिल जाया करती थी किंतु अब इन धातुओं का वापर (प्रयोग) ही नहीं रहा है। अब पूरे रसोईघर में स्टेनलेस स्टील के चमकदार बर्तन देखने को मिलते हैं। शुद्ध पीतल और तांबा के भाव आसमान छूने लग गये हैं और जो कुछ टूट भाग फूट आदि इकट्ठी भी हो जाती है तो लोग भरावों को देने की बजाय अन्यत्र देना ही उचित समझते हैं।

भरावा कला कई तरह की बड़ी दुरूह प्रक्रियाओं से गुजरती है इसलिए इस जाति के नवयुवक इस ओर आकर्षित नहीं हो पाते हैं। वे जानते हैं कि इस अर्थ प्रधान युग में इतनी हाड़तोड़ मेहनत यदि किसी अन्य धन्धे में की जाए तो अच्छा खासा कमाया जा सकता है और फिर जो काम मशीनों की सहायता से सरलतापूर्वक किया जा सकता है उसे अंगुलियों की रेखाएं घिसाकर करते रहने का कोई तुक नहीं है।

राजस्थानी लोककलाओं का सर्वेक्षण (18)

- डॉ. महेन्द्र भानावत -

नीमोदा के गोपा बलाई से तेजा के कुछ प्रसंग भी रेकार्डिंग किये। ढोलक, अलगोजा तथा तालों के साथ एक व्यक्ति तेजा उगेरता है तथा अन्य उस गायकी को दोहराते रहते हैं। यह मुख्यतया तेजा दशमी को गाया जाता है। यहां रामलीला के कुछ अंश दिये जा रहे हैं।

लंका-चढ़ाई का प्रसंग :

लंका पे करी छै चड़ाई जी प्रभु ने लंका पे जी,
अजी लंका पे जी, लंका पे भी करी छै चड़ाई जी।
प्रभु ने लंका अजी लंका पे जी।
प्रभु ने लंका पे भी करी छै चड़ाई जी।
प्रभु ने लंका पे जी दुष्ट रावण से या होवेगी लड़ाई॥ प्रभु ने॥
अब चाले न सायर नीर भूप अब सला करे ना,
भूप अब सला करे ना, भूप अब...।
अनुज अब सला करे ना रे भाई
भक्त यो अबे यो कसो वतावे रे सार।
अर सो जोजन मुरजाद समंद की कसीवद उतरां पार।
प्रभु ने लंका पे जी, प्रभु ने लंका पे करी छै चड़ाई,
प्रभु ने लंका पे जी॥
अरे कोई दन सेत बंधे बस जोजन कोई वन जी,
अनुज दल कोई दन जी, अनुज दल कोई बन जी।
समंद पर कोई दन बांधां साठ अकस पचीस,
कोई दन बांधां साठ पचास कोई दन बांधां....।
अरे सेत समंदर बांध मित्र उतरे ने रे पेली भी पार।
प्रभु ने लंका पे जी, प्रभु ने लंका पे करी छै चड़ाई जी,
प्रभु ने लंका पे जी।।

अशोकवाटिका में रावण-सीता संवाद :

रावण - अरे कां रया थारा राम र लछमण अरी कां रया री।
सिया बी सुरण कां रया री जानकी कां रया री॥
सिया बी सुरण कां रयो सब
परवार छोड़ कर कैसे आई मारी लार।
कैसे आई मारी लार छोड़ कर कैसे री,
छोड़ कर कैसे री, छोड़ कर कैसे री॥
सब राण्यां बीच करूं पटराणीजी ये मेराबी समचार
सिया सुण ऐसा री, सिया सुण ऐसा री॥
सिया सुण ऐसा चरत आणि
मंडोडर आज करूं रे पटराणी।

सीता - रावण दुख मत दे रे रावण दुख मत दे रे ।
रावण दुख मत दे मोकूं आज राम तोये छन में डारे मार।
अरे दूरां सूं ई बतलाजे दुष्ट तू तो
कांई सामने आव रावण दुख मत दे रे।

रावण - अरी अब आयो मूं बी थारे री सामने कांई
करे री, सिया बी सुण कांई करे री।
सिया बी सुण कांई कर सकनई बात
काल थारो लिखियो री हमारे हाथ।
अरी लिखियो री हमारे हाथ,
अरी लिखियो री हमारे हाथ।
काल थारो लिखियो हमारे हाथ।
अर कल मारूंगी री राम र लछमण याही हमारी बात।
सिया सुण ऐसा री, सिया सुण ऐसा री,
सिया सुण ऐसा री।

सांगोद : 8 मई 1969

सांगोद का नहान अत्यंत प्रसिद्ध रहा है। किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसके दस-बारह दिन बाद नहा धोकर उसका शोक भांगा जाता है। शोक दूर करने की यह क्रिया 'नहान' के नाम से लोक प्रचलित रही है।

होलिका की मृत्यु के दस-बारह दिन बाद उसका शोगाला दूर कर 'नहान' के रूप में संपूर्ण कोटा रियासत में स्वाँग तमाशों के आयोजन प्रारम्भ हुए। कहा जाता है कि सर्वप्रथम किसी उपाध्याय ब्राह्मण ने कोटा दरबार रामसिंह द्वितीय (1828-66) को एक तमाशा दिखलाया जिससे दरबार अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे नजराना दे कर विदा किया। आगे जाकर यही तमाशा नहान-नहाण-न्हाण की सवारी का प्रतीक बन गया।

यहां दो प्रकार के न्हाण आयोजित किये जाते हैं- (1) बाजार का न्हाण (2) खाड़े का न्हाण।

चैत्र कृष्णा तृतीया-चतुर्थी को बाजार तथा षष्ठी-सप्तमी को खाड़े के न्हाण की सवारी निकाली जाती है। इन सवारियों में मुगल संस्कृति की शाही झलक देखी जाती है। इनमें बादशाह की पालकियां सजाई जाती हैं जिन्हें आदमी अपने कंधों पर उठाये चलते हैं। इन पालकियों में आगे बादशाह तथा उनके पीछे उनके वजीर बिठाये जाते हैं । पालकी के आगे घोड़ों पर उमरावों की झांकियां प्रदर्शित की जाती हैं। इनकी पोशाकें आकर्षक तथा बेशकीमती होती हैं। बादशाह की पगड़ी पर तुर्रे कलंगी लगाये जाते हैं। आगे-आगे रंडियाँ अपना नृत्य दिखाती हुई चलती हैं। लक्ष्मीनाथजी के चौक में जाकर ये सवारियाँ रुक जाती हैं। यहाँ नानाप्रकार के स्वांग, नटों की कलाबाजियां तथा जादुई करिश्में दिखाये जाते हैं।

नहान में चाचा वोहरा का स्वांग मुख्य रहा है। इसमें चाचा बोहरा घोड़े पर निकलते हैं। आगे नगाड़े शहनाई का बाजा बजता हुआ और भांड गाता हुआ, अपनी बोली करता हुआ तथा प्रशंसा के पुल बांधता हुआ चलता है। हिंजड़े नृत्य करते हैं और नाना बखान कर चाचा बोहरे का दिल बहलाते हैं।

चाचा बोहरा की पेरावणी होती है। शादी विवाह होता है। रायभाट आता है। कवित्त करता है और इनाम पाता है। गायकी में प्रश्नोत्तर चलते हैं। चाचा बोहग के पश्चात सैणा बलाई आता है। प्राचीन समय में सैणा जिस प्रकार पब्लिक पर रोप-गालिब किया करता था उसकी नकल बताई जाती है, और सामाजिक कुरीतियों का भंडाफोड़ किया जाता है। इसके बाद बलाई, पटेल का स्वाँग आता है। भिश्ती मशक लाता है और गाना गाता है - मैं तो भश्ती हमाम का आया रे....

सातमाता की सवारी :

इन सवारियों के दूसरे दिन सातमाता की सवारी निकाली जाती है। इसमें सात बालकों को सात माताओं के स्वाँग धारण कराये जाते हैं। ये स्वांग भी पालकियों में निकाले जाते हैं। ये पालकियाँ दाऊजी के मन्दिर से प्रारम्भ होकर अंत में खाड़े पर पहुंचती हैं। प्रति रात्रि को विभिन्न प्रकार के स्वाँग प्रदर्शित किये जाते हैं।

न्हाण की बनोली :

न्हाण के पूर्व न्हाण की बनोली निकाली जाती है। इसके बाद भी पाँच-सात दिन तक सवारियों के आयोजन चलते रहते हैं। बाजार के न्हाण वाले तृतीया तथा खाड़े के न्हाण वाले अष्ठमी को बारे भाले की सवारी निकालते हैं।

इसमें राजसी पोशाक में सरदार तथा उमराव लोग भाग लेते हैं। नगाड़े, झडे, निसांन तथा आतिशबाजी से इसकी शोभा देखते ही बनती है। बाजार के न्हाण का संचालन नीलगर मुसलमान तथा खाड़े के न्हाण का संचालन चौबे जाति के लोग करते हैं। न्हाण की सवारी दुर्गा की पवित्र भावना की प्रतीक कही जाती है इसलिए इन दिनों दुर्गा का अखण्ड पाठ कराया जाता है।

यहां अस्सी वर्षीय लक्ष्मीलालजी ननवाणा से उनके मकान पर भेंट की गई जबकि वे रुग्णावस्था में अपने खटिये पर लेटे हुए थे। उन्होंने कहा कि यहाँ ब्रह्माणी देवी की मानता अधिक रही है। रामलालजी गुजर, 62 वर्ष की आयु में लगभग बारह वर्ष पूर्व जिनका देहावसान हुआ, कहते थे कि प्रारभ में लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व इधर छिटपुट ख्याल होते तथा ब्रह्माणी का स्वांग लाया जाता था। स्वाँगड़िया अपने तेल से तरबतर हाथों में लोहे की गर्म-गर्म जंजीर लिए निकल पड़ता।

वह देवी के यश गाया करता था और अपने सिर पर दीवट जलाया करता था। इसके साथ-साथ और भी स्वांग निकलते थे। इसके साथ रायगुड़गुड़ी नामक बाजा बजा करता था जिससे गु गु गु गु रु रु रु रु की आवाज निकला करती थी। ये स्वांग रात्रि को बारह बजे से लेकर प्रात: 8 बजे तक चलते थे।

विनोद : मई 1969

सांगोद से बैलगाड़ी द्वारा हम विनोद पहुंचे। यह स्थान सांगोद से पांच मील दूर पड़ता है। यहां हम कोटा के ठाकुर माधोसिंहजी महियारिया के खलिहान में ठहरे। महियारियाजी सुशिक्षित एवं सांस्कृतिक कलाभिरुचि वाले व्यक्ति हैं। जब हमने उनको अपने आने का मंतव्य बताया तो उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हुई और उसी रात को अपने खलिहान में ही लोकगायकों का खासा मजमा जमा दिया। यों कलामण्डल की गतिविधियों से वे पूर्व परिचित थे ही।

यहां हमने पैंसठ वर्षीय घासी मीणा से पृथ्वीराज के सम्पूर्ण कड़ों को लिपिबद्ध किया। ये कड़े इन्होंने मकड़ावद के सुखदेव मीणा से सीखे थे जो प्रतिवर्ष आसोज में नवरात्रा पर इधर कड़े गाने आया करते थे।

सुखदेव अभी 75 वर्ष के हैं और अंधे हैं। ये पृथ्वीराज चौहान न होकर मऊ बोरदा के पृथ्वीराज खींची थे जिन्होंने बादशाह अकबर की फौज से बहादुरी के साथ टक्कर ली थी। पृथ्वीराज ने राजा मान पर तलवार का वार किया। उससे लोहे की कोटी कट कर होदा कटा और पाग के तीन पेच कट गये पर तलवार के मूठ से निकल जाने के कारण पृथ्वीराज परास्त हो गये और भाग गये।

पृथ्वीराज के कड़ों के साथ साथ घासीजी से ढोलामरवण, निहालदे, रामरसायण के कुछेक स्थल भी लिपिबद्ध किये। इसके अतिरिक्त कन्हैया खोखर, शंकर, मेहर तथा पन्ना मीणा से तेजाजी, प्रभु मीणा, शंकर, कन्हैया खोखर तथा उनके साथियों से हीड़, बालमुकुन्द ब्राह्मण से हाली हालण तथा बहत्तर वर्षीय शार्दूलसिंह वीरम से पुरानी बात का कुछ अंश रेकाडिंग किया। हमारे द्वारा किये गये रेकार्डिंग के कुछ स्थल यहां द्रष्टव्य हैं -

अहमना के छोये :

एक तरिया तमके थूं लाजे ए छाछ कामणी तमके।
एक पाणी में घायल राकदूंजी।
एक दादा बेटी परणावां रे गाय थारी बेटी।
घास फूस सूं पेट म्हां भरां म्हारा दादाजी।
अरे क तरिया लाजे थूं धनष कबाण म्हारे लाजे।
पांचूं पलकारे बीजलसार का कामणी जी।
अरे क यो तो चाल्यो अरजण को बाण यो तो चाल्यो।
सात समंद ठंडो जाय यो अरजण को जी।
अरे क दादा ने छी पंडवां में या बाय दादा ने छी पंडवां में या बाय।
हतणापर की पोल कंवारी छै म्हारा दादाजी।
अरे क दादा आछो करता रे थारो ब्याव दादा।
देदे भोलाया जान्या घूंमता म्हारा दादाजी।

पृथ्वीराज के कड़े :

हाथीड़ा के होदे सूं ढोलासा कूद पड्यौ ले नंगी तलवार।
फोज बतूसी खेराबाद की सूरां का संगराम।
ढल कट तो व्हे पड़े पीतल का सा देव।
रगतर खाल्यां व्है चली रण खेतां के मांय।
तड़क-तड़क तो यां की मुंडक्यां पड़े धड़ की पचास्यां होय।
रगतर खाल्यां व्है रई रण खेतां के मांय।
अतनी सुण्यां सू परथीराज कूद पड्यो ले नंगी तलवार।
जीवतो पकड्यो मीणा बाव ने अपूठो बांध।
मीणा ई पकड़तां मीण्यां दौड़ पड़ी लंबी झोल्यां पसार।
पेली खा छा राव म्हाराज के छे म्हां थांकी बस्ती का लोग।
अतनी सुण्यां सू परथीराज केवे सुण ढोला परधान।
लारां ले लो मीणा बाव ने चले आपणी लार।
वाजोई नगारो दल का कूंच हुया गेरा उड़े।
वाजोई नगारो दल का राता उड़े।
वाजोई नगारो दल का ने आने घाटी दिया मुकाम।

उलटा कागद रे मनसी फेर लखो काल्या भील के।
नांव ऊंट्यां चरे छै परथीराज को यां ने भीलवाड़े ले जाय।
दोड़ा की पतर्यां दोड़ा में पूगगी बसो बसी नंद गाम (कोटा)।
दन के उग्यां पो फाटतां भीलवाड़े पोंचाय।
पतर्या ई जातां ई बरबार जुड्यो अर मनसी दियो बलाय।
कागद आयो छै राव म्हाराज को मोई जलदी बांच सुणाय।
कागद बांचे मनसी जबाब करे सुरजे कालू भील।
ऊंट्यां चरे छै परथीराज की वांने भीलवाड़े पोंचाय।
उलटा कागद तो मनसी फेर लावो नरमल लखदो जबाब।
ऊंट पांच रे छै परथीराज की म्हारी कांई छै ओकाद।

पतर्यां ई के जातां ई दरबार जुड्यो पर धीरा सा लियो बलाय।
पतर्यां ओ ई कालू भील की यां रा जलदी बांच सुणाय।
पतर्यां बांचे छै धीरासा जबाव करे सुरण जो राव म्हाराज।
ऊंट्यां चरे छै परथीराज की म्हारी कांई ओकाद।
उलटाई कागद रे धीरासा फेर लखो अर करड़ो लावो जबाव।
टुकड़ां को पाल्यो कालू भीलड़ो उलटो दियो जबाव।
पतर्यां आई के जातां तो मनसी बला र लायो सुणजे म्हारो जबाव।
पतर्यां आई छै राव म्हाराज की यां ए जलदी बांच सुणाव।
पतर्यां ई बांचे छै मनसी जबाव करे छै सुणजे कालू भील।
टुकडां को पाल्यो कालू भीलड़ो उलटो दियो जबाब।
उलटी रे उलटो कागज मनसी फेर लखो अर करड़ा लखां जबाब।
ऊंट्यां चरे छै कालू का पेट में यो मस्तक टूंट्यां जाय।

- **क्रमश :**

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक डॉ. तुक्तक भानावत द्वारा 352, कृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर - 313001 (राज.) से प्रकाशित एवं मुद्रक लोकेश कुमार आचार्य द्वारा मैसर्स पुकार प्रिंटिंग प्रेस 311-ए, चित्रकूट नगर, भुवाणा, उदयपुर (राज.) से मुद्रित। सम्पादक : रंजना भानावत। फोन : 0294-2429291, मोबाइल - 9414165391, Email : shabdranjanudr@gmail.com, drtuktakbhanawat@gmail.com, सर्व विवादों का न्याय क्षेत्र उदयपुर होगा।